जनवरी — 2021
वर्ष–85 | अंक–1 | ₹–19 प्रति | ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

7 साधना-पथ की चुनौती
13 शांत मन में उतरता है ध्यान
20 अहम से परम की यात्रा है योग
55 मानसिक स्वास्थ्य का भी रखें ध्यान

Scanned with CamScanner

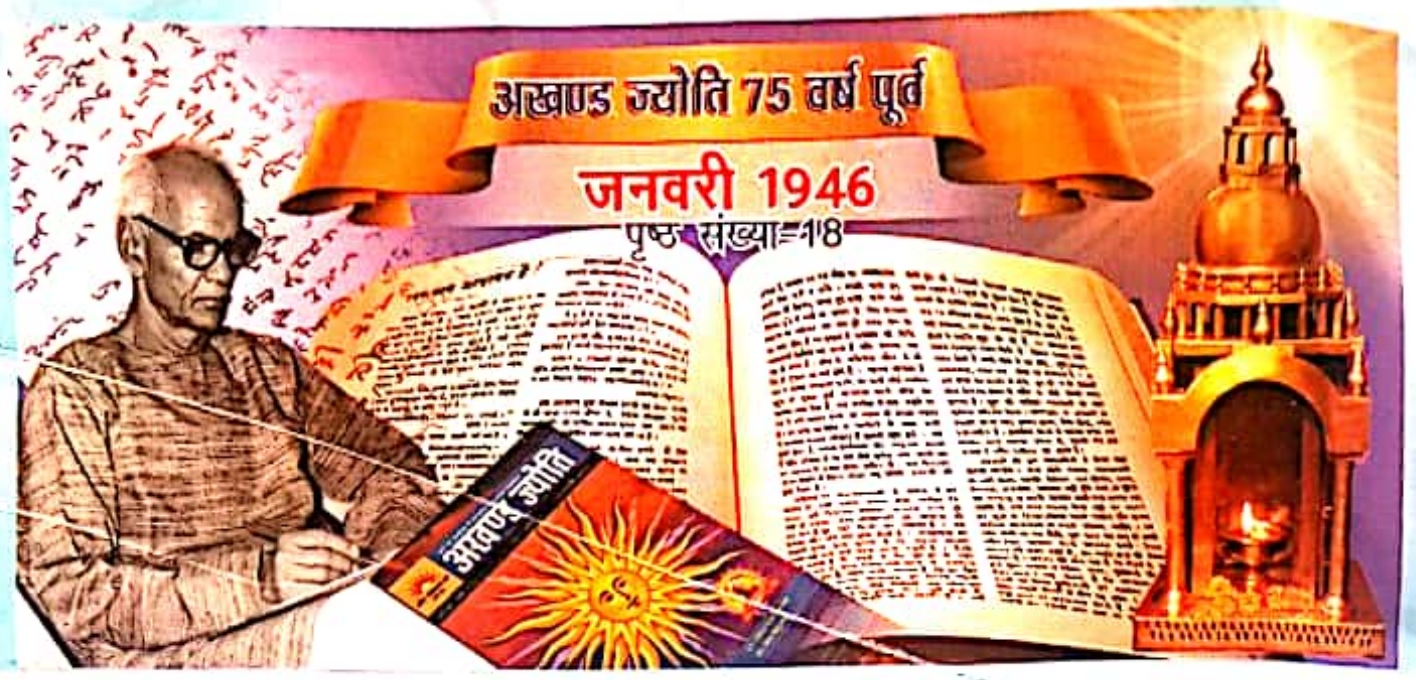

रचनात्मक कार्य का मूलस्रोत

"जब तक मनुष्य अपनी भीतरी अवस्था का ध्यानपूर्वक विचार नहीं करता और अपने भीतरी शत्रुओं अर्थात क्रोध, स्वार्थ, चिंता, निराशा, संताप को काबू में नहीं करता, जीवन की निराश एवं क्षुद्र वासनाओं को मन-मंदिर में से नहीं निकाल देता, तब तक वह पूर्ण स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता।अनिष्ट मनोभावों से मुक्ति ही उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य है।

जितना ही मनुष्य स्वार्थपरता को छोड़ेगा और अलौकिक बुद्धि, जो बल और योग्यता प्रदान करती है, को विकसित करेगा, उतना ही उसके महान सामर्थ्य जाग्रत होंगे। अंतर्मन की गुप्त शक्तियाँ प्रकट होंगी। अंतःकरण में कोई भी विचार दृढ़ता से जमाने पर वे मस्तिष्क में दृढ़ता से अंकित हो जाते हैं।

इसके विपरीत अति क्रोध, शोक, चिंता से मन की शक्तियों का ह्रास होता है। जब तुम अपने आप को कोसते हो, अनिष्ट मनोभाव के वशीभूत हो जाते हो, चिंता करते हो, भयंकर व्याधियों को न्योता देते हो और रक्त को अशुद्ध बना देते हो। तुम्हारे गिरते स्वास्थ्य का कारण तुम्हारे अंतःकरण की दुर्बलता है। नीच स्थिति ही तुम्हारे अतुल सामर्थ्यों का नाश कर रही है।

हम नित्यप्रति के जीवन में अपने मनोभावों के अनुसार अपनी कार्योत्पादक शक्ति को बढ़ाते या पंगु करते रहते हैं। यदि हम सदा पूर्ण स्वास्थ्य, सुख, शांति का आदर्श सन्मुख रखकर उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्रयत्नशील हों और यह समझते रहें कि सर्वशक्तिमान परमात्मा के अंश होने से हम आत्मा हैं तो हमें वह स्वास्थ्यकर शक्ति प्राप्त हो जाएगी, जो हमारे अंतःकरण की निम्न भूमिका में स्थित रोग संबंधी भ्रांतियों को कमजोर कर देगी।

क्षुद्र मनोभाव से हम अपने स्वास्थ्य को दुर्बल कर डालते हैं। भ्रम व चिंता हमें कहीं का भी नहीं छोड़ती हैं। हमें चाहिए कि अपने मन से अप्रीतिकर, अस्वास्थ्यकर और बुढ़ापे के विचारों को हटाने का अभ्यास करें, जीवन के कलुषित एवं कष्टसाध्य उपकरणों पर कल्पना को न भटकने दें, अपने विषय में गर्हित चित्रों की छाया मन:प्रदेश में न प्रवेश होने दें। आप अपने जीवन में जो कुछ भी करें, जिस ओर अग्रसर हों, अपने मनोभाव उत्तम रखिए और उन्हें केवल उच्च्व भूमिका में ही विचरण करने दीजिए।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

Scanned with CamScanner

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 01
जनवरी	: 2021
पौष-माघ	: 2077
प्रकाशन तिथि	: 01.12.2020

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	: 5000/-

आत्मिक ज्योति

प्रकाश के दो आयाम हैं, दो पक्ष हैं—एक को ऊर्जा और दूसरे को आभा के नाम से पुकारा जा सकता है। एक से हमको ऊष्मा तो दूसरे से मार्गदर्शन प्राप्त होता है। सरदी हो रही हो तो प्रकाश से प्राप्त ऊष्मा हमको गरमी प्रदान करती है तो वहीं अंधकार से घिर जाने पर प्रकाश की एक किरण हमें सुरक्षित मार्ग की ओर इंगित भी कर देती है। आत्मा के भीतर से निस्सृत होने वाला प्रकाश भी कुछ इसी तरह की व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करता है। अंतर मात्र इतना है कि आत्मिक ज्योति यदि एक बार जल जाती है तो फिर उसे बुझा पाना संभव नहीं है।

भौतिक प्रकाशस्रोतों का प्रारंभ नियत है तो उनका अंत भी सुनिश्चित है। यहाँ तक कि ग्रह-नक्षत्रों का आदि और अंत निर्धारित है, सुनिश्चित है। दीपक के प्रकाश से लेकर ट्यूब लाइट की रोशनी—इन सभी को एक-न-एक दिन चुकना ही पड़ता है। यहाँ तक कि सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव भी एक दिन रश्मियाँ बिखेरना बंद कर देते हैं और वैज्ञानिकों की भाषा में कहें तो 'ब्लैक होल' में परिवर्तित हो जाते हैं। इन सबके विपरीत आत्मिक ज्योति अखंड है—उसके एक बार जल पड़ने पर, उसको बुझा पाना संभव नहीं है।

आत्मिक प्रकाश का स्रोत श्रद्धा है। श्रद्धा से सिक्त अंतःकरण सर्वत्र प्रकाश को अनुभूत कर पाने की स्थिति में होता है। श्रद्धा जाग जाती है तो जीवन प्रकाशित हो जाता है। बाह्य जीवन भी पुण्य-परमार्थ के लिए गतिशील हो जाता है; व्यक्तित्व उत्कृष्टता को समर्पित हो जाता है और आदर्शवादिता सहज जीवन-व्यवहार का अंग बन जाती है। श्रद्धा बाह्य प्रकाश की भाँति ऊर्जा का केंद्र भी है और आशा का स्रोत भी। अनेकों को दिशा देने वाली किरणें भी उसी से निकलती हैं और कठिन परिस्थितियों में मन को मजबूती देने वाले संकल्प भी उसी के कारण उभरते हैं। श्रद्धा विकसित हो जाने पर आत्मिक प्रकाश के, अंतर्निहित ज्योति के सभी मार्ग स्वतः खुल जाते हैं। ❐

Scanned with CamScanner

विषय सूची

- आत्मिक ज्योति 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  बेरोजगारी की समस्या का सामयिक समाधान 5
- साधना-पथ की चुनौती 7
- आध्यात्मिक शक्ति के चमत्कार 9
- **पर्व विशेष**
  भारतीय संविधान में राष्ट्रीय चेतना का समावेश 11
- शांत मन में उतरता है ध्यान 13
- श्वास-प्रश्वास की वैज्ञानिकता 15
- माँ भारती की अनन्य उपासिका भगिनी निवेदिता 17
- अहम् से परम की यात्रा है योग 20
- दिव्य स्थल मानसरोवर 22
- परिवाररूपी संस्कारशाला को सहेजने की आवश्यकता 25
- शक्ति-उपासना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 27
- सुपात्र ही पाते हैं ईश्वरीय वरदान 29
- क्या हम जानते हैं स्वयं को? 31
- उत्कर्ष का आधार—प्रबल इच्छाशक्ति 33
- नववर्ष की मंगलकामना 35
- साधना में संयम से मिलती है सिद्धि 39
- **चेतना की शिखर यात्रा—220**
  विडंबना और तथ्य 42
- देवर्षि नारद की पत्रकारिता 45
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—141**
  भय एवं चिंता पर महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक शोध 47
- वातावरण के विष को सोख लेते हैं पेड़-पौधे 49
- **युगगीता—248**
  प्रवृत्ति का भेद बनाता है किसी को देव तो किसी को असुर 52
- मानसिक स्वास्थ्य का भी रखें ध्यान 55
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  व्यक्तित्व का परिष्कार (प्रथम किस्त) 57
- **विश्वविद्यालय परिसर से—187**
  श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक व्यक्तित्व 63
- **अपनों से अपनी बात**
  अखण्ड दीपक की आध्यात्मिक ऊर्जा एवं अखण्ड ज्योति की वैचारिक ऊर्जा का केंद्र शांतिकुंज 67
- सुयोगों की वेला (कविता) 70

आवरण पृष्ठ परिचय

प्रखर प्रज्ञा एवं सजल श्रद्धा के बीच प्रकाशमान अखंड दीपक

जनवरी-फरवरी, 2021 के पर्व-त्योहार

शनिवार	09 जनवरी	सफला एकादशी
मंगलवार	12 जनवरी	स्वामी विवेकानंद जयंती/ राष्ट्रीय युवा दिवस
बुधवार	13 जनवरी	अमावस्या/लोहड़ी
गुरुवार	14 जनवरी	मकर संक्रांति
मंगलवार	19 जनवरी	सूर्य षष्ठी
बुधवार	20 जनवरी	गुरु गोविंद सिंह जयंती
शनिवार	23 जनवरी	सुभाष चंद्र बोस जयंती
रविवार	24 जनवरी	पुत्रदा एकादशी
मंगलवार	26 जनवरी	गणतंत्र दिवस
शनिवार	30 जनवरी	शहीद दिवस
रविवार	31 जनवरी	संकष्ट चतुर्थी
रविवार	07 फरवरी	षट्तिला एकादशी 'स्मा.'
गुरुवार	11 फरवरी	मौनी अमावस्या
मंगलवार	16 फरवरी	वसंत पंचमी
बुधवार	17 फरवरी	सूर्य षष्ठी
मंगलवार	23 फरवरी	जया एकादशी
शनिवार	27 फरवरी	संत रविदास जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

Scanned with CamScanner

विशिष्ट सामयिक चिंतन

बेरोजगारी की समस्या का सामयिक समाधान

वर्तमान समय में देश में बढ़ती बेरोजगारी की दर सभी के लिए एक गंभीर चिंता का विषय बनी हुई है। विगत वर्ष का प्रारंभ होते-होते यह दर 7.8 % तक पहुँच चुकी थी और कोरोना वायरस के कारण फैले विश्वव्यापी संकट के बाद तो यह स्थिति और भी भयावह हो गई है। अंतिम प्राप्त जानकारी के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में ये आँकड़े—6.4 % बेरोजगारी की दर तो शहरी इलाकों में 9.7 % की दर बताते थे।

गंभीर बात यह है कि बेरोजगारी की इस तेजी से बढ़ती दर के कारण देश में घटने वाले अपराधों की संख्या में भी तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। सिनेमा से लेकर समाचारपत्रों में परसते मनोरंजन की दुनिया के लुभावने सपने व्यक्ति को तेजी से बढ़िया-से-बढ़िया फोन, कार, विलासिता के अन्य साधनों को प्राप्त करने के लिए ललचाते हैं, परंतु रोजगार के अभाव में फिर ऐसे लोग अपराधों की दिशा में मुड़ने लगते हैं। एक बार उस तरह की संगत मिलने लगती है तो फिर दुर्व्यसन भी उनको ग्रस्त कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि बेरोजगारी की एक समस्या—अपराधों से लेकर हिंसा, दुर्व्यसनों आदि न जाने कितनी अन्य समस्याओं को जन्म देती नजर आती है।

वर्तमान परिस्थितियों का यह एक दुर्भाग्यपूर्ण सत्य है कि आज देश का युवा वर्ग बहुत तेजी से अपराधों की दिशा में बढ़ रहा है। देश की राजधानी दिल्ली का ही यदि उदाहरण लें तो यहाँ विगत चार दशकों में अपराध दर तीन गुना से ज्यादा बढ़ी है। इसी के साथ नक्सलवाद, हिंसा, बलात्कार, आतंकवाद जैसी घटनाएँ भी बढ़ी हैं, जिनके पीछे भी किसी-न-किसी रूप में बेरोजगारी की बढ़ती समस्या जिम्मेदार है।

आज भारत में सर्वत्र मल्टीनेशनल कंपनियों का वर्चस्व है। मशीनीकरण होने के कारण मजदूरों से लेकर कृषकों की आजीविका नष्ट हुई तो वहीं ऑटोमेशन के कारण ऑफिस में बैठने वालों के रोजगार भी छिनते नजर आते हैं।

ऐसा नहीं है कि बेरोजगारी की समस्या का कारण वैज्ञानिक प्रगति है, परंतु वैज्ञानिक प्रगति की तीव्रता के साथ कदम न जुड़ पाने के कारण भी बेरोजगारी की दर में वृद्धि हुई है। यह भी सत्य है कि मल्टीनेशनल कंपनियाँ तीव्रता के साथ इस तरह की कार्यव्यवस्था भारत में ला रही हैं, किंतु यहाँ उसी के अनुरूप शिक्षा, प्रशिक्षण इत्यादि के अभाव में ऐसे लोगों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, जो बदलती व्यवस्था के अनुरूप अपना विकास नहीं कर पाते हैं एवं परिणामस्वरूप अपने रोजगार को गँवा बैठते हैं।

विगत वर्ष तक तो स्थिति यह थी कि सर्वत्र चीन में बने सामान की माँग नजर आती थी। चीन से आने वाले सस्ते सामानों ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण को पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया था। दिल्ली के प्रगति मैदान में लगने वाले 'वर्ल्ड ट्रेड फेयर' में भी चीन की वस्तुओं के प्रति ही आकर्षण नजर आता था। लोग भारत में बनने वाले सामान को त्यागकर चीन में बनने वाले सामान की बुकिंग कराते थे।

उदाहरण के तौर पर—चीन में बनने वाले टायरों की कीमत भारत में बनने वाले टायरों की कीमत से 6 हजार रुपये तक कम थी। भले ही इन सामानों की गुणवत्ता एवं जीवनावधि भारतीय सामानों की तुलना में कम थी, तब भी विदेशी सामान और वो भी सस्ता—इसके आकर्षण ने भी भारतीय रोजगार व्यवस्था को बहुत ज्यादा हद तक चोट पहुँचाई थी। इन बातों के साथ यह भी सत्य है कि कोरोना वायरस के विश्वव्यापी संकट की शुरुआत चीन के वुहान प्रांत से होने के कारण एवं सीमा पर भारत-चीन संबंधों में तल्खी आने के कारण संपूर्ण विश्व में चीनी वस्तुओं के प्रति आकर्षण तेजी से घटा है।

देश में यदि गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को दूर करना है तो हमें स्वदेश में निर्मित सामग्री का उपयोग करना सीखना होगा और तब ही देश में व्याप्त इस समस्या का सम्यक समाधान किया जा सकना संभव बन पड़ेगा। स्वदेशी सामान भले ही थोड़ा महँगा हो, परंतु गुणवत्ता की

Scanned with CamScanner

दृष्टि से उत्तम है और इसके कारण अपने ही देशवासियों को रोजगार मिलता है। साथ ही कोई खराबी आने पर इसे आसानी से ठीक भी किया जा सकता है; जबकि विदेशी सामानों की इस तरह की कोई गारंटी नहीं होती है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा शांतिकुंज में इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सन् 1980 के दशक में ही स्वावलंबन का प्रयोग-प्रशिक्षण प्रारंभ कर दिया गया था। इससे पूर्व उनके द्वारा गायत्री तपोभूमि में युग निर्माण विद्यालय को प्रारंभ करने के पीछे का उद्देश्य भी यही था। उस समय भारत के एक प्रसिद्ध चिंतक द्वारा पूज्यवर से इस शुरुआत में निहित कारण को पूछे जाने पर उन्होंने कहा था कि भारत का विकास, भारत के गाँवों के विकास को समग्र रूप दिए बिना, स्वदेशी स्वावलंबन के बिना अधूरा है। सच्चा स्वराज्य भारत को तब ही मिल सकता है, जब हम इसी भाव को सच्चे अर्थों में अपनाएँ। ऐसा करने से देश को टिकाऊ विकास तथा आर्थिक स्वावलंबन मिल सकेगा तथा देश के युवा वर्ग को रोजगार भी प्राप्त हो सकेगा।

यही कारण था कि परमपूज्य गुरुदेव ने आदर्श ग्राम की स्थापना के लिए उसके स्वस्थ, स्वच्छ, शिक्षित, स्वावलंबी, व्यसनमुक्त, संस्कारयुक्त, सहकारयुक्त होने का चिंतन दिया था। शांतिकुंज में स्थापित स्वावलंबन की इस प्रशिक्षण कार्यशाला ने ही देखते-देखते देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक विशालकाय स्वावलंबन प्रशिक्षण विद्यालय का स्वरूप ले लिया, जिसके स्वरूप और प्रभाव को देखकर लोग आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहते हैं। उस विद्यालय में हस्तनिर्मित कपड़े, कागज के उत्पादन से लेकर भोज्य सामग्री जैसी अनेक विधाओं में प्रशिक्षण कराया जाता है, जो संपूर्ण विश्व में एकमात्र ऐसा उदाहरण है।

वर्षों पहले महात्मा गांधी ने देश की संपूर्ण जनता का ध्यान स्वदेशी वस्त्रों की ओर आकर्षित किया था और मैनचेस्टर, इंग्लैंड में बनने वाले कपड़ों को त्यागने का आग्रह देशवासियों से किया था। परिणाम यह हुआ कि हजारों बेरोजगारों को भारत में ही रोजगार मिलने लगा। आज पुनः वैसा ही कुछ घट रहा है। आज हस्तनिर्मित कपड़ों के स्थान पर पश्चिमी भान लिए जींस इत्यादि का प्रचलन बढ़ रहा है। ऐसा होने के कारण देश के हजारों बुनकर भुखमरी के कगार पर आकर खड़े हो गए हैं।

ऐसे में परमपूज्य गुरुदेव द्वारा शांतिकुंज में स्थापित मॉडल के कारण सर्वत्र हस्तनिर्मित कपड़ों की बहार-सी आ गई है। कागज से लेकर सारी स्टेशनरी ही हस्तनिर्मित होती है, जिसका प्रभाव अपने लोगों को रोजगार देने के रूप में तो दीख पड़ता ही है, साथ ही इसका परिणाम यह भी निकल करके आता है कि पर्यावरण संरक्षण का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व भी इससे परिपूर्ण हो पाता है।

आज अनेक राज्यों में गरीबों को सस्ता अनाज, निःशुल्क भोजन सामग्री व यहाँ तक की निःशुल्क मोबाइल, लैपटॉप तक दिए जा रहे हैं, परंतु आज की ज्वलंत आवश्यकता रोजगार है, जिसे स्वदेशी स्वावलंबन पर जोर देकर सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। आज इस बढ़ती बेरोजगारी और उससे उपजी गरीबी को नियंत्रित करने के लिए सभी को गंभीरता से चिंतन करना होगा और उसका सही समाधान भी निकालना होगा। समय रहते यदि ऐसा न किया गया तो देश में गरीबी, बेरोजगारी तो बढ़ेंगी ही, साथ ही हिंसा, अपराध की दरें भी बढ़ती चली जाएँगी।

इसीलिए छोटे उपक्रमों, लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों, स्वदेशी उत्पादों के निर्माण, प्रशिक्षण एवं उनके विश्व बाजार में विस्तार के लिए लोगों को पहल करने की आवश्यकता है। सरकारी तंत्र द्वारा ग्रामीण इलाकों की तरह से शहरी क्षेत्रों में भी रोजगार गारंटी योजना को चलाने की आवश्यकता है। ऐसा करने से घरेलू बाजार में बढ़ते विदेशी वर्चस्व को थामा जा सकेगा एवं लोगों को रोजगार भी उपलब्ध कराया जा सकेगा।

शांतिकुंज में परमपूज्य गुरुदेव ने वर्षों पहले ही आज की इस समस्या का समाधान ढूँढ़ निकाला था और उसी के सत्परिणाम आज इस रूप में दिखाई पड़ते हैं कि न केवल शांतिकुंज और देव संस्कृति विश्वविद्यालय, बल्कि गायत्री परिवार के हजारों केंद्र इसी पृष्ठभूमि पर खड़े नजर आते हैं।

स्पष्ट है कि यदि करोड़ों गायत्री परिजनों के मध्य यह प्रयोग सफल हो सकता है तो इसे अन्य स्थानों पर भी सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा वर्षों पहले स्थापित इस प्रारूप की गंभीरता को आज इस दृष्टि से समझा जा सकता है कि इसी प्रयोग द्वारा आज के समय की इस गंभीर समस्या का समाधान संभव है। ❑

Scanned with CamScanner

साधना-पथ की चुनौती

जीवन में सच्चे सुख, शांति व आनंद की खोज में व्यक्ति जाने-अनजाने अध्यात्म मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है। कभी अपनी इच्छा से, तो कई बार देखा-देखी और कभी-कभी परिस्थितियों के प्रहार से चोटिल होकर। यदि इस मार्ग में सही दिशाबोध कराने वाला मार्गदर्शक मिल जाए तो फिर अस्तित्व के रहस्य परत-दर-परत अनावृत होते जाते हैं। ऐसे में आदि शंकराचार्य के बताए जीवन के तीन सौभाग्य चरितार्थ होने लगते हैं। पहला—मानव जीवन, जिसे प्राप्त करना सबके लिए सुलभ नहीं होता। दूसरा—मुक्त होने की अभीप्सा और तीसरा—महापुरुषों का संसर्ग।

सौभाग्यशाली हैं गायत्री परिवार से जुड़े साधकगण, जिन्हें युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के रूप में ऐसा समर्थ संरक्षण एवं मार्गदर्शन उपलब्ध है, लेकिन गुरु के मिल जाने भर से आत्मोन्नति का काम पूरा नहीं हो जाता। साधक को अपनी साधना की मंजिल तक पहुँचने से पहले इसके उतार-चढ़ाव के बीच से होकर गुजरना ही पड़ता है। साधक जब निर्दिष्ट मार्ग पर सजगता से आगे बढ़ता है और दीर्घकालीन प्रयास-पुरुषार्थ के बाद भी स्वयं को यथास्थिति में पाता है अथवा साधना में ठोस प्रगति होते हुए नहीं देख पाता तो ऐसी स्थिति में उसका हताश-निराश होना स्वाभाविक है। ऐसे में कई तो अपनी साधना छोड़ देते हैं और अपने पूर्वकालिक सांसारिक जीवन में संलिप्त हो जाते हैं या फिर धर्म-अध्यात्म के नाम पर अपनी छल-छद्म की दुकान शुरू कर देते हैं, लेकिन साधना के मार्ग एवं विधान से इस सबका कुछ लेना-देना नहीं होता।

वस्तुत: साधना में गुरु की सहायता सदा साथ ही होती है, बाधा व्यक्ति स्वयं ही होता है, जिसे वह पूरी तरह समझ नहीं पाता। भूल प्राय: साधना को कर्मकांड और व्रत-अनुष्ठान तक सीमित मानकर चलने से होती है, जिसमें अपने सुधार की अधिक जहमत नहीं उठाई जाती। ज्ञात हो कि अध्यात्म का मार्ग बहुत सरल भी है और अत्यंत कठिन भी। सरल उनके लिए, जिनका चित्त शुद्ध है और जिनके आंतरिक अवरोध न्यूनतम हैं। कठिन उनके लिए, जिनका चित्त शुद्ध नहीं है और जन्म-जन्मांतर के कुसंस्कार हर कदम पर रोड़ा बनकर उनके सामने खड़े हो जाते हैं और उन्हें साधना-पथ पर एक भी कदम आगे बढ़ने नहीं देते।

ऐसे में संस्कार की चट्टानें पीठ पर लादे शिखर का आरोहण भला कैसे संभव हो सकता है? नाव में भरी भारी चट्टानों के साथ संसार-सागर कैसे पार किया जा सकता है? संस्कारों के क्षय की, चित्त के हलके होने की प्रक्रिया समयसाध्य होने के साथ ही कष्टसाध्य होती है, जिसमें वर्षों लग सकते हैं। पूरा जन्म खप सकता है। यहाँ तक कि कई जन्म भी लग सकते हैं, लेकिन इसमें हताश होने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अपने यथार्थ से परिचय कल्याणकारी सिद्ध होता है। निम्न प्रकृति का रूपांतरण, स्वभाव में बदलाव अपनी कीमत माँगता है, जिसे तुरत-फुरत, शॉर्टकट में, जल्दी में नहीं किया जा सकता। आत्ममूल्यांकन के आधार पर प्रत्येक साधक अपनी वस्तुस्थिति का बोध कर सकता है और तदनुरूप अपनी जीवन-साधना के पथ पर आगे बढ़ सकता है।

जहाँ खड़े हैं, वहीं से आगे बढ़ना स्वर्णिम रीति है। इसके अलावा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यदि असीम धैर्य के साथ साधना-पथ पर डटे रहें तो एक दिन मंजिल अवश्य मिलकर रहती है। साधना-पथ की बारीकियों को समझने के लिए योगी, महापुरुषों के साधनात्मक जीवन की पुस्तकें बहुत प्रेरक साबित होती हैं, जिनके द्वारा आध्यात्मिक जीवन के अवरोधों को किस तरह से पार किया गया—इसका स्वाध्याय आवश्यक संबल प्रदान करता है; जिसके प्रकाश में साधक अपनी यथास्थिति का अवलोकन करते हुए तदनुरूप हृदय की पुकार को और तीव्र कर अपने नैष्ठिक प्रयास की त्वरा को तीव्र करके आगे बढ़ सकता है। मार्ग की यथार्थवादी समझ व्यक्ति को सदैव सजग एवं प्रतिबद्ध रखती है कि कार्य इतना सरल भी नहीं कि कुछ मिनट व घंटे की पूजा, अनुष्ठान से काम चल जाए।

साधना तो अहर्निश चलने वाली प्रक्रिया है। जीवनपर्यंत निभाई जाने वाली जागरूकता है। तब तक चलने वाली

Scanned with CamScanner

जीवनव्यवस्था है, जब तक कि आध्यात्मिक लक्ष्य न मिल जाए। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि ईश्वर अनुभूति से पहले कोई भी सुरक्षित नहीं है। ऐसे में इस देह के चिता पर चढ़ने से पहले कोई सोचे कि वासना से बच जाएगा, वह गलतफहमी में है। भगवान बुद्ध का मार अर्थात पापपुरुष से युद्ध अंतिम समय तक चलता रहा और उस पापपुरुष की मायावी चालों को निरस्त करते हुए गौतम अंतत: बुद्धत्व को प्राप्त हुए।

इस तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रूपी षड्रिपुओं की अनगिनत अग्नि परीक्षाएँ साधक की राह में पग-पग पर खड़ी रहती हैं। महान तपस्वी विश्वामित्र साधना के चरम पर बार-बार स्खलित होते हैं, पतित होते हैं, लेकिन हर गलती से सबक लेते हुए अंतत: ऋषित्व को प्राप्त होते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट निर्देश है कि ईश्वरप्राप्ति से पूर्व, ईश्वरीय स्पर्श को पाए बिना कोई भी मुक्त नहीं हो सकता। जो प्रभु का शरणागत है, वही सुरक्षित है, अन्य सभी को उनकी माया का ग्रास बनना पड़ता है।

वस्तुत: साधना-पथ तन्मयता, अनवरत प्रयास-पुरुषार्थ और समर्पण का मार्ग है। जब साधक को गुरु का दिव्य स्पर्श मिलता है, जो साधना की पराकाष्ठा पर उपलब्ध होता है; तब ही साधक आत्मबोध, आत्मसाक्षात्कार, ईश्वरप्राप्ति जैसी स्थिति को प्राप्त होकर अध्यात्म की पहली मंजिल पर पहुँचता है। इसके बाद असली कार्य आरंभ होता है और उसकी निम्न प्रकृति का रूपांतरण घटित होता है। तब संस्कारों का क्षय होता है, जो फिर अपनी कीमत माँगता है। यदि साधक अभी इस अवस्था से दूर है या साधनात्मक प्रयास के वांछित परिणाम प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो मानकर चले कि जो अब तक किया जा रहा था, वह पर्याप्त नहीं था।

ऐसे में अपने प्रयास में नई त्वरा लाने की, पुरुषार्थ को प्रचंड करने की व राह में मिले सबक के अनुरूप नई रणनीति के साथ आगे बढ़ने तथा अपने प्रयास में एकाग्रता और निष्ठा लाने की आवश्यकता है। बुद्धि के निर्णयों पर साहसिक अमल की दरकार एवं गुरुसत्ता द्वारा बताई गई सरल एवं प्रभावशाली साधनाओं को समझने व अपनाने की आवश्यकता है। सुबह उठने से लेकर शयन तक के कालखंड को आत्मबोध से लेकर तत्त्वबोध के दायरे में समेटने की आवश्यकता है।

अपनी उपासना, साधना और आराधना को समग्र रूप में लागू करने का समय है। संयम, स्वाध्याय, सेवा, साधना के व्यावहारिक अध्यात्म को अपनाने की जरूरत है। सद्बुद्धि एवं आत्मबल की अधिष्ठात्री आदिशक्ति माँ गायत्री तथा त्यागपूर्ण श्रेष्ठतम कर्मयज्ञ के मर्म को जीवन में धारण करने की आवश्यकता है। युग निर्माण सत्संकल्प, जिसमें व्यक्ति से लेकर युग का पूरा विधान, संपूर्ण संविधान बीज रूप में भरा पड़ा है, इसको हृदयंगम करने की आवश्यकता है। यही साधना-पथ का समर है। ❑

एक नदी के किनारे वृक्ष की डाल पर एक कबूतर बैठा था। उसने देखा कि नदी में एक चींटी बड़े प्रयास के बावजूद भी किनारे पर नहीं आ पा रही है। कबूतर ने एक पत्ता चींटी के पास पानी में गिरा दिया। चींटी उस पत्ते पर चढ़ गई, पत्ता बहकर किनारे पर लग गया। चींटी ने पानी से बाहर आकर कबूतर का आभार व्यक्त किया। तभी एक बहेलिया चुपके से कबूतर को अपने बाँस में फँसाने का प्रयास करने लगा। कबूतर ने बहेलिये को नहीं देखा, परंतु चींटी ने देख लिया। चींटी ने कबूतर को बचाने के उद्देश्य में तुरंत बहेलिये की जाँघ पर काट लिया, जिससे बाँस हिल गया और पेड़ के पत्ते खड़क गए। फलत: कबूतर सावधान होकर उड़ गया। जो दूसरों की सहायता करते हैं, उन्हें संकट में सहायता अवश्य मिलती है।

Scanned with CamScanner

आध्यात्मिक शक्ति के चमत्कार

विभिन्न धर्मग्रंथों में साधकों को धार्मिक-आध्यात्मिक साधनाओं से प्राप्त होने वाली आध्यात्मिक शक्तियों का वर्णन मिलता है। योगसूत्र में योग-साधनाओं से प्राप्त होने वाली नाना प्रकार की सिद्धियों, विभूतियों का वर्णन है। संत तुलसीदास जी ने हनुमान चालीसा में **'अष्ट सिद्धि नवनिधि के दाता, अस वर दीन्ह जानकी माता'** कहा है, जिसका अर्थ है माता जानकी ने महावीर हनुमान जी को वरदानस्वरूप अष्टसिद्धि-नवनिधि के दाता होने की शक्ति प्रदान की।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार अध्यात्म एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, एक प्रयोग है, जिससे गुजरने पर साधक को अनंत आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। भारतवर्ष के महान संतों, साधकों, योगियों व ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक, यौगिक साधनाओं के द्वारा ही अनंत शक्तियाँ, सिद्धियाँ, विभूतियाँ प्राप्त की थीं। वे उन आध्यात्मिक शक्तियों से ही लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन व पीड़ा निवारण किया करते थे।

भारत के महान साधु-संतों, ऋषियों व योगियों के अनेक चमत्कारों की कहानियाँ आज भी सुनने व पढ़ने को मिलती हैं। उनके द्वारा किसी रोगी को छूकर रोगमुक्त कर देने व किसी मृतदेह को छूकर उसमें प्राणों का संचार कर देने जैसी अद्भुत घटनाएँ सुनने व पढ़ने को मिलती हैं। ये आश्चर्यजनक भी हैं और सत्य भी। वास्तव में निरंतर योग साधनाओं से जब तन-मन की शुद्धि होती है, हृदय में पवित्रता आती है, तब साधकों में ऐसी चुंबकीय शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण वे किसी को केवल आशीर्वाद देकर या छूकर ही रोगमुक्त कर सकते हैं।

इसी कारण साधु-संत, ऋषि-योगी आदि किसी के विचारों और भावनाओं को बदल देते थे। वास्तव में वे उच्च चुंबकीय शक्ति से सहज ही दूसरों की पीड़ाओं, अभावों व दुःखों को दूर कर दिया करते थे। सनातन संस्कृति में साधु-संतों, ऋषियों, योगियों व गुरु जनों के चरणस्पर्श करने की परंपरा रही है। वे चरणस्पर्श करने वालों के सिर पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद देते हैं। ऐसे दिव्य व महान लोगों के चरणस्पर्श करने के पीछे एक वैज्ञानिक कारण है। उनके चरणस्पर्श करने से एवं उनके द्वारा सिर पर हाथों के स्पर्श से उनमें विद्यमान आध्यात्मिक चुंबकीय शक्तियाँ चरणस्पर्श करने वाले के शरीर में प्रविष्ट हो जाती हैं। आध्यात्मिक चुंबकीय शक्ति के इस संचार से उन्हें अपने जीवन में सुख और शांति ही प्राप्त नहीं होते, वरन उनके विचारों को पवित्रता तथा आत्मा को तृप्ति मिलती है।

विश्व के अनेक धर्मग्रंथ आध्यात्मिक पुरुषों की चुंबकीय शक्तियों के चमत्कारपूर्ण उदाहरणों से भरे पड़े हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस में अपार आध्यात्मिक चुंबकीय शक्ति थी। एक बार जब उन्होंने अपने पैर से नरेंद्र को स्पर्श कर दिया था तो उनका स्पर्श पाते ही नरेंद्र यह कहते हुए चीख उठे थे—"नहीं! नहीं! मैं इस शक्ति को सहन नहीं कर सकता। मुझे सारा संसार घूमता हुआ दिखाई दे रहा है।" वास्तव में स्वामी रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक शक्ति उनके स्पर्श के साथ ही युवक नरेंद्र के संपूर्ण शरीर में विद्युतधारा की तरह दौड़ने लगी थी।

इसी प्रकार भारत के महानतम योगी महर्षि रमण भी आध्यात्मिक ऊर्जा के शक्तिपुंज थे। उनके आश्रम में जानवर और पक्षी भी निर्भय होकर रहते थे। रमण महर्षि इन पक्षियों और जानवरों को मनुष्यों की तरह संबोधित करते थे। महर्षि और ये पशु-पक्षी एकदूसरे से बहुत घुल-मिल गए थे। यूरोप के एक लेखक पॉल ब्रंटन ने महर्षि की ख्याति के बारे में सुना तो वे उत्सुकतावश महर्षि से मिलने के लिए उनके आश्रम पहुँचे। वहाँ उनके साथ जो घटना घटी, उसने उनकी आँखें खोल दीं। वे रात को एक मचान पर सोने की तैयारी कर रहे थे कि तभी उन्होंने देखा कि मचान पर एक जहरीला साँप चढ़ रहा है। उन्हें लगा कि उनकी मृत्यु निश्चित है। तभी रमण महर्षि का एक सेवक वहाँ आया और साँप से मनुष्य की तरह बातें करते हुए बोला—ठहरो बेटा! यह सुनते ही साँप एक आज्ञाकारी बालक की तरह जहाँ-का-तहाँ रुक गया और फिर पहाड़ों की तरफ गया और गायब हो गया। पॉल ब्रंटन के लिए यह घटना चकित

Scanned with CamScanner

कर देने वाली थी। उन्होंने आश्रम के सेवक से पूछा—"आखिर तुमने यह चमत्कार कैसे किया?" सेवक ने उत्तर दिया—"यह चमत्कार मैंने नहीं, महर्षि रमण ने किया है। उनके अनुसार जीव-जंतुओं से यदि हम प्रेम से बोलेंगे तो वे अवश्य सुनेंगे।" वास्तव में जीव-जंतुओं में आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार कर महर्षि रमण उन्हें वशीभूत कर लेते थे।

भारत के महानतम योगियों में महर्षि अरविंद अपनी दिव्य आध्यात्मिक ऊर्जा से अपने शिष्यों को निहाल किया करते थे। एक बार उनके आश्रम में कुछ शिष्य उनके पास बैठकर ध्यान कर रहे थे। वहाँ स्तब्ध नीरवता छाई हुई थी। ध्यानस्थ शिष्यों में से कुछ ने अवतरित होते हुए प्रकाश के सागर को देखा। वहाँ उपस्थित शिष्यों ने अपने सिर के ऊपर एक प्रकार के दबाव का अनुभव किया। सारा वातावरण मानो बिजली की ऊर्जा से भरा पड़ा था। चारों ओर नीरवता छाई हुई थी। दिव्यता का सागर उमड़-घुमड़ रहा था। लगभग पैंतालीस मिनट का ध्यान हुआ, उसके बाद एक-एक करके शिष्यों ने महर्षि अरविंद व श्रीमाँ को प्रणाम किया।

इस युग के महान दार्शनिक, योगी व गायत्री के सिद्धसाधक पूज्य गुरुदेव आध्यात्मिक ऊर्जा के प्रखरतम पुंज थे—जिन्होंने अपनी दिव्य आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार कर कोटिशः साधकों के जीवन को रूपांतरित किया। गायत्री के चौबीस-चौबीस लाख के चौबीस महापुरश्चरण संपन्न कर लेने के बाद तो मानो उनकी स्थूल काया भी दहकते हुए अँगारे से कम न थी। उन दिनों वे भीषण गरमी में भी कंबल ओढ़ा करते थे और काला चश्मा पहने हुए होते थे, ताकि उनके रोम-रोम से बह रही आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रदर्शन बाहर किसी को न हो सके। इसके साथ ही उन दिनों शिष्यों को उनके चरणस्पर्श न करने के भी निर्देश थे, ताकि वे चरणस्पर्श कर प्रखर आध्यात्मिक ऊर्जा के विद्युतीय झटके से बचे रह सकें।

नेत्रों से बहती आध्यात्मिक ऊर्जा को लोकदृष्टि से छिपाए रखने के लिए ही वे उन दिनों काला चश्मा पहना करते थे, परंतु परोक्ष रूप से वे अपनी उस घनीभूत आध्यात्मिक ऊर्जा का शक्ति संप्रेषण लोक-कल्याण के लिए ही किया करते थे। कई बार तो उन्होंने कइयों में अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा का संप्रेषण कर उन्हें नवजीवन भी प्रदान किया। प्राण-प्रत्यावर्तन जैसे विशेष आध्यात्मिक शिविरों में उन्होंने सुपात्र साधकों में विशेष शक्ति का संचार कर उन्हें सचमुच निहाल किया और दिव्य जीवन की ओर प्रेरित कर दिया। उनके जीवन के ऐसे अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं।

इसी प्रकार सूर, तुलसी, रैदास, नानक, कबीर, मीरा आदि संतों का जीवन भी आध्यात्मिक ऊर्जा से जुड़े चमत्कारों से भरा पड़ा है। भारत के प्राचीनतम ऋषि-मुनियों से लेकर आधुनिक युग के महानतम योगी अग्निदीक्षा, ब्रह्मदीक्षा, मंत्रदीक्षा आदि विभिन्न प्रकार की दीक्षाएँ देते हुए अपने शिष्यों में, साधकों में शक्ति संचार किया करते थे। इसे हम शक्तिपात करना भी कह सकते हैं। वास्तव में मनुष्य के भीतर असीमित शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। हमारी पिंडरूपी काया में पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है। यदि हम विविध योग साधनाओं व गुरुकृपा से अपनी वासनाओं व इच्छाओं को रूपांतरित कर लें तो हम न केवल अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन कर निहाल हो सकते हैं, बल्कि स्वयं में ही आध्यात्मिक शक्तियों की दिव्य अनुभूति भी कर सकते हैं। ❑

केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्।
सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति॥

—महाभारत अनु. पर्व, अ. 145

केवल नक्षत्र किसी को शुभ या अशुभ फल नहीं देते। उसके अपने किए गए कर्मों को ही लोग नक्षत्रों का नाम दे देते हैं।

Scanned with CamScanner

पर्व विशेष

भारतीय संविधान में राष्ट्रीय चेतना का समावेश

भारतीय संविधान में समाहित राष्ट्रीय चेतना क्या है—वर्तमान समय इसको प्रतिपादित करने का है। अनादिकाल से चली आ रही भारतीय संस्कृति आज भी जीवंत है और अनेक कुठाराघातों को झेलकर भी फल-फूलकर आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई है। जीवन के मूल्यों और सिद्धांतों को, जिन्हें हमारे महापुरुषों, संतों व ऋषियों ने पोषित किया और हिंदू धर्म-संस्कृति से उद्घोषित किया, वह आज भी पल्लवित अवस्था में विद्यमान है। भारतीय संविधान में भारत की प्राचीन संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश मिलता है। संविधान निर्माताओं ने इसी भाव से भारतीय संविधान में राष्ट्रीय चिंतन की दिशा का स्पष्ट संकेत दिया है।

सर्वप्रथम संविधान के मुखपृष्ठ पर हमारे राष्ट्रीय चिह्न अशोक स्तंभ का चित्र है। सम्राट अशोक भगवान राम के बाद एक आदर्श राजा हुए हैं। इसके साथ एक चित्र कमल का दिया गया है। कमल इस बात का प्रतीक है कि निर्मल हृदय रहो। साथ ही नंदी का चित्र है, जो गोवंश का प्रतीक है। यह संकेत करता है कि भारत की प्राचीन संस्कृति में हमने अपनी धरती को माँ के रूप में देखा है।

यह प्रदर्शित करता है कि गाय राष्ट्रीय पशु है और हमें पशुओं के प्रति सद्भावना रखनी चाहिए। संविधान के नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत केंद्र एवं राज्यों को निर्देश दिए गए हैं कि वे गाय और गोवंश के वध पर रोक लगाएँ और गोवंश की रक्षा के लिए उत्तम प्रयास करें। वैदिक युग में ऋषिकुल—ऋषियों के निवास स्थान के चित्र के रूप में दरसाए गए हैं। ये चित्र भारत के वैदिक साहित्य, वेद, पुराण, उपनिषद् और इतिहास की ओर संकेत करते हैं।

एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण चित्र है—मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम, लक्ष्मण एवं सीता जी का, जो लंका विजय के पश्चात पुष्पक विमान पर विराजमान हैं। यह दृश्य लंका विजय के उपरांत भगवान राम द्वारा सीता को वापस लाने के प्रसंग से लिया गया है। संविधान के चौथे अध्याय में महाभारत से चित्र लिया गया है; जिसमें भगवान कृष्ण हतोत्साहित अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए कर्मयोग का पाठ पढ़ा रहे हैं। गीता में उपदेश देना एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसे संविधान सभा ने स्वीकार किया है। अध्याय पाँच में भगवान गौतम बुद्ध का चित्र है।

भगवान महावीर भारत के मान्य महापुरुष थे और उनके द्वारा प्रवर्तित मत भारतीय संस्कृति एवं जीवनमूल्यों के विकसित रूप थे और भारतीय संस्कृति के अंग के रूप में उन्हें संविधान सभा द्वारा स्वीकार किया गया। उनकी जड़ें भारत की भूमि में गहरी हैं। सम्राट अशोक द्वारा किए गए बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार का दृश्य भी इसमें है। स्वर्णमुद्रिका को हाथ में लिए हुए सीता की खोज में उड़ते हुए अंजनिपुत्र हनुमान का चित्र भी इसमें है, जो भारत के हर नागरिक को यह संदेश देता है कि वह राष्ट्रहित को रामहित समझकर अपने कर्त्तव्य में निरत रहे।

उपरोक्त चित्र इस बात का सबूत है कि भारत की संविधान सभा ने भगवान राम, भगवान हनुमान, भगवान कृष्ण, भगवान शिव, भगवान बुद्ध एवं भगवान महावीर स्वामी को भारत के ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय महापुरुषों के रूप में स्वीकार किया है। अत: भारतवर्ष के उपरोक्त राष्ट्रीय महापुरुषों के विरुद्ध कुछ कहना राष्ट्रद्रोह है। महाराजा विक्रमादित्य का चित्र भी उसमें है, उनके नाम से भला कौन परिचित नहीं है? भारत में विक्रम संवत् उन्हीं के नाम से चलता है।

विक्रमादित्य ने भारत की संस्कृति एवं इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। उन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों को भारत से बाहर खदेड़कर इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया कि उनके नाम से विक्रम संवत्सर प्रारंभ हुआ और अपने मौलिक संविधान में उनको एक विशेष स्थान दिया गया व उनके दरबार का चित्र दिया गया, जिस पर भारत के मनीषियों के हस्ताक्षर हैं।

Scanned with CamScanner

भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों में तक्षशिला एवं नालंदा अत्यधिक प्रसिद्ध थे; जिनमें से नालंदा विश्वविद्यालय का चित्र संविधान में है। उड़ीसा की स्थापत्य कला का एक दृश्य भी उसमें चित्रित है। संविधान के अध्याय 12 के प्रथम पृष्ठ पर अंकित चित्र में भगवान शंकर नटराज के रूप में चित्रित हैं। भगवान शिव समस्त भारतवर्ष में पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण तक सर्वव्यापी रूप में प्रतिष्ठित हैं। भगीरथ के गंगा-अवतरण प्रयास के चित्र में तपस्या के फलस्वरूप गंगा जी धरती पर तीनों रूपों में आईं तथा भगवान शिव ने उन्हें अपनी जटाओं में धारण किया। गंगा जी के ये तीन रूप हैं—सिंधु, गंगा, भागीरथी।

अध्याय 14 में हमें अकबर के दरबार का भी चित्र मिलता है। अकबर अपने आचरण में अन्य यवन राजाओं से भिन्न था। तलवार के जोर पर शासन करने के बजाय जनमानस को अपनी ओर खींचने का उसने प्रयास किया। अकबर ने जजिया नामक कुत्सित कृत्य पर रोक लगाई और उसे हटाया। जजिया का प्रयोग अकबर के पूर्व मुगल शासकों एवं उसके पश्चात औरंगजेब ने धर्मांतरण के लिए किया, किंतु अकबर ने जजिया नामक इस कुत्सित कर को समाप्त कर दिया था। दीन-ए-इलाही चलाने के अतिरिक्त अकबर अनेक भारतीय त्योहारों एवं उत्सवों को भी मनाता था।

छत्रपति शिवाजी महाराज एवं सिख पंथ के दसवें गुरु एवं खालसा पंथ के संस्थापक गुरु गोविंद सिंह जी का भी वर्णन इसमें मिलता है। दोनों महापुरुष भारत के मध्यकालीन इतिहास की अतिमहान विभूतियाँ थे। शिवाजी ने हिंदू स्वराज की घोषणा की थी और गुरु गोविंद सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना कर पंच ककार (केश, कच्छ, कड़ा, कंघा, कृपाण) के माध्यम से भारतीय संस्कृति की रक्षा की थी। इन दोनों महापुरुषों का समय औरंगजेब के शासनकाल में था।

भारतीय संविधान में दो चित्र—टीपू सुल्तान और भारत की नारी शक्ति का प्रतीक वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई के भी हैं और ये दोनों शक्तियाँ ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ खड़ी हुई थीं। अध्याय 17 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का चित्र है, जो डांडी यात्रा का है और अध्याय 18 पर महात्मा गांधी का नोवाखाली दंगाग्रस्त क्षेत्रों में शांति स्थापना के लिए भ्रमण करते हुए चित्र है। भारत की स्वतंत्रता हेतु क्रांतिकारी आंदोलन से संबंधित अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी—नेताजी सुभाषचंद्र बोस व अन्यों के चित्र भी हैं, जिनमें तिरंगे झंडे को नमन करते हुए नेताजी को दिखाया गया है।

सभी चित्र संविधाननिर्माताओं की राष्ट्रभक्ति और उदार चरित्र का प्रदर्शन करते हैं, जिसमें स्वतंत्रता संग्राम की दो धाराओं के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित होता है तथा देश के लिए दिए गए बलिदानों का चित्रण होता है। भारत के सुदूर उत्तरी भूस्थल पर हिमालय के उत्तुंग शिखर हैं। जहाँ हमारे अगणित तीर्थ कैलास मानसरोवर, अमरनाथ आदि स्थित हैं।

हिमालय का चित्र इस भूस्थल की उत्तरी सीमा को भी प्रदर्शित करता है; जो हिंदूकुश पर्वत से लेकर अरुणाचल की पूर्वी सीमा तक फैला हुआ है। भारत के मूल संविधान में अंकित चित्र राष्ट्रीय तत्त्वज्ञान से प्रेरित है। इस तरह संविधान में अंकित वे चित्र आज भी राष्ट्रीय चेतना का जागरण कर रहे हैं। ❑

विलंब की सूचना

कोविड-19 महामारी के कारण मार्च, 2020 से संपूर्ण भारतवर्ष में लॉकडाउन रहा, ट्रेनें अभी तक नहीं चल पा रही हैं। सर्वविदित है कि डाक का प्रेषण रेल डाकसेवा के माध्यम से होता है। डाकसेवा बाधित चल रही है—छोटे-मोटे पत्र/पैकिट सड़क मार्ग से जिस-तिस प्रकार पहुँच रहे हैं। अब डाक विभाग आंशिक रूप से जिस-तिस प्रकार डाक वितरण का कार्य प्रारंभ कर पा रहा है। आगे भी आपकी प्रिय अखण्ड ज्योति/युगनिर्माण योजना/गुजराती युगशक्ति गायत्री/प्रज्ञा अभियान कब तक मिलें, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हम लोग भरसक प्रयास कर रहे हैं कि पत्रिकाएँ समय से पहुँचें। विवशता के लिए हमें भी खेद है। आशा है परिवार के सदस्य अन्यथा न लेंगे।

Scanned with CamScanner

शांत मन में उतरता है ध्यान

ध्यान अर्थात स्थिरता, एकाग्रता, तन्मयता। धारणा के प्रवाह में जब मन एक विषय में लय होने लगता है, उसी ओर बहने लगता है, उसमें लीन होने लगता है तो उसे ध्यान कहते हैं। पतंजलि कहते हैं—**तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।** अर्थात जो हमने धारणा की, उसके साथ मन तादात्म्य होने लगे, मन तदाकार होने लगे, तो समझो ध्यान होने लगा।

प्राय: मन एक स्थान पर टिकता नहीं है। उसका स्वभाव चंचल रहता है। एक क्षण के लिए भी वह कहीं नहीं रुकता है। कभी कोई विचार आता है तो कभी कोई। कभी कोई भाव पैदा होता है तो कभी कोई यादें उसे घेर लेती हैं। विचार, वृत्ति और स्मृति—इनकी लहरें मन के सरोवर में पैदा होती रहती हैं और ये लहरें हैं कि थमने का नाम ही नहीं लेतीं। हम जब तक सो नहीं जाते, तब तक कुछ-न-कुछ सोचते ही रहते हैं।

सुबह उठने के बाद से लेकर रात में सो जाने से पहले तक यदि हम अपना मन देखें यानी मन का खेल देखें कि हम क्या करते रहते हैं तो पता चलेगा कि हम कुछ-न-कुछ सोचते रहते हैं। कुछ-न-कुछ चलता रहता है मन में, दिमाग में। जो कुछ हम सोचते रहते हैं, उसके भी विविध रूप होते हैं। कभी हमारे मन में कोई विचार होता है, कभी मन में कोई कल्पना पैदा होती है, कभी मन में कोई चाहत जन्म लेती है तो कभी कोई भाव पैदा होता है। कभी किसी की याद आती है। मतलब अनेक तरह के विचार, अनेक तरह के भाव। ये पैदा होते ही रहते हैं और थमते नहीं हैं। सो जाने के पश्चात रुक जाते हैं, यह हम निश्चित रूप से कह नहीं सकते हैं। इसलिए नहीं कह सकते; क्योंकि यदि सो जाने के बाद ये थम जाते तो सपने क्यों आते? कुछ-न-कुछ मन में चलता रहता है तो सपने भी आते रहते हैं।

यह स्थिति आज से नहीं है, बल्कि जब से हमने होश सँभाला है, जब से जिंदगी जीना शुरू किया है, तब से है। बच्चे तो कई बार सपना देखते हैं और सपने को सच भी मान लेते हैं। जैसे उन्होंने सपने में खिलौने अपने लिए बटोरे। जो हमारी चाहत होती है, उसी के इर्द-गिर्द हमें सपने आते हैं। बच्चे जागने के बाद खिलौने ढूँढ़ते हैं। कहाँ गए खिलौने, अभी तो यहीं रखे थे। उनको मालूम ही नहीं कि वो सपना देख रहे थे, जिसमें वास्तविकता नहीं थी।

इस तरह हमारा मन आसानी से कहीं टिकता व ठहरता नहीं है। हम सोचते हैं कि मन को ठहराएँ। जब ध्यान करने बैठते हैं तो मन में बड़ी खींच-तान होती है। अनेक दिशाओं में मन खिंचा चला जाता है और कई बार हमारा ध्यान इस वजह से थकान में बदल जाता है। हम थक जाते हैं; क्योंकि सामान्य दशा में हम मन के साथ खींच-तान नहीं करते हैं। मन जो करता है; उसे करने देते हैं, लेकिन ध्यान में हम सोचते हैं कि ध्यान हमें लगाना चाहिए। इसमें हमारी एकाग्रता होनी चाहिए। उस विषय पर हमें एकाग्र होना चाहिए तो हम बड़ी खींच-तान करते हैं। इस तरह ध्यान हमारे लिए विश्राम नहीं, बल्कि थकान बन जाता है।

हम कह सकते हैं कि ध्यान का तो नहीं मालूम लेकिन थोड़ी देर के लिए हमें गहरी नींद आ जाए तो विश्राम अवश्य मिल जाता है। हमें ताजगी व स्फूर्ति मिलती है, लेकिन ध्यान में ऐसा नहीं मिल पाता है; क्योंकि ध्यान में मन को एकाग्र करने में हम थक जाते हैं। ध्यान में कहते हैं कि बड़ा आनंद आता है, परंतु इस भाग-दौड़ से उपजी थकान में आनंद कैसा? ध्यान में हम कोशिश करने में लगे रहते हैं, लेकिन सच बात यह है कि ध्यान ही एक ऐसी प्रक्रिया है, एक ऐसी विधि है, जो बिना किसी कोशिश के पूरी होती है। जहाँ कोशिश नहीं, जहाँ कोई श्रम नहीं, केवल विश्राम है और इसमें कुछ करना नहीं है।

जैसे जब हम आसन करते हैं; जब शवासन करते हैं तो हम क्या करते हैं—कुछ करते ही नहीं हैं। लेट जाते हैं, शिथिल हो करके। जब मन शांत होता है तो वह ध्यान में प्रवेश करता है। सामान्य तौर पर हम तन से तो शांत हो जाते हैं, लेकिन मन से कोशिश करते रहते हैं तो विश्राम कहाँ से

Scanned with CamScanner

हुआ ? ध्यान वो पल है, ध्यान वो क्षण है, जिसमें हमें कुछ भी नहीं करना है। तन से ही नहीं, मन से भी नहीं। इसमें कोई कोशिश नहीं करनी है। बस, भाव की गहराई में समा जाना है और अपने ही भीतर डुबकी लगा लेनी है। इसलिए ध्यान को हम मन का स्नान भी कह सकते हैं। मन ध्यान के सरोवर में डुबकी लगाकर डूब जाता है।

अगर ध्यान हम करने लगें और हमारा ध्यान लगने लगे तो हमें विश्राम मिलेगा। इससे हमारे शरीर और मन को एक नया जीवन, एक नया उत्साह, एक नई उमंग, नई स्फूर्ति, नई शक्ति, नई ऊर्जा प्राप्त होगी; क्योंकि सारे दिन की उथल-पुथल में हम अपनी ऊर्जा गँवा देते हैं और ध्यान करने से हम पुनः अपनी ऊर्जा को प्राप्त करते हैं और उसका संग्रह कर पाते हैं।

हमको नींद की आवश्यकता क्यों है ? सच पूछो तो नींद सामान्य जनों का ध्यान ही है। जब हम शरीर और मन को शिथिल करके छोड़ देते हैं और सो जाते हैं तो मन सहज रूप से ध्यान की अवस्था में चला जाता है। चूँकि सोते समय हम अचेतन में प्रवेश कर जाते हैं, हम जाग्रत नहीं रहते हैं, इसलिए इस ध्यान में प्रवेश का हमें एहसास नहीं होता, लेकिन ताजगी, स्फूर्ति व शांति के रूप में इसका प्रतिफल हमें मिलता है।

आजकल स्थिति यह है कि इस सहज ध्यान का लाभ भी सब लोग नहीं ले पाते; क्योंकि नींद भी आजकल मुश्किल हो गई है। मुश्किल इसलिए हो गई है; क्योंकि लोगों को नींद न आने की शिकायत हो गई है। नींद नहीं आती है; क्योंकि उन्हें चिंताएँ घेरे रहती हैं और मजे की बात है कि नींद भी आजकल थकान में बदल गई है। वहाँ पर भी वही खींच-तान चलती रहती है कि सवेरे ये करना है, शाम को ये करना है। दिन भर के विचार उसे घेरे रहते हैं और ये विचार हमें मात्र थकाते हैं।

जिनको अवसाद होता है, उनका मन शांत नहीं होता और विचारों के झोंके बराबर आते हैं। कई बार कभी-कभी आते हैं तो कई बार यों ही आ जाते हैं। ऐसा होता है कि विचारों का एक झोंका सवेरे आया तो एक दोपहर में और फिर एक शाम को। किसी-किसी को मौसम के आधार पर अवसाद होता है। अब सरदी जाने वाली है और गरमी आने वाली है तो अवसाद हो गया। सरदी आने वाली है तो अवसाद। विभिन्न प्रकार के अवसाद देखने को मिलते हैं और सबका कारण यह है कि हम विचारों से घिरे रहते हैं। उधेड़बुन में फँसे रहते हैं और हमें चिंताएँ घेरे रहती हैं।

इस तरह के मनोभाव ही हमारे लिए कई बार मनोरोग बन जाते हैं। हमारी असुरक्षा, अनिश्चितता, भय और हमारी चिंताएँ—ये हमारे मन पर बोझ बने रहते हैं। इन सबसे मुक्त होकर शांत मन में प्रवेश करना ही ध्यान के सरोवर में स्नान करना है। शांत मन में हम जितनी देर ठहरते हैं, उतनी ही देर हमारा ध्यान होता है और व्यक्तित्व संतुलित होता है। मन शांत हो वहाँ ध्यान उतरता है; उसी शांत स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न हमको निरंतर करना चाहिए। ❑

तीन यात्री पहाड़ की यात्रा पर निकले। मार्ग दुश्वार था, रास्ते में धूप व थकान से उनका गला सूखने लगा। प्यासे यात्रियों की दृष्टि दूर बहते एक झरने पर पड़ी। एक यात्री ने आसमान की ओर मुख किया और भगवान से प्रार्थना करने लगा कि वह बिना किसी प्रयास के झरने तक पहुँच जाए। दूसरे ने मेघों को प्रसन्न करने के लिए स्तोत्र पढ़ना प्रारंभ कर दिया।

तीसरा चुपचाप झरने की तरफ चल पड़ा और कुछ समय की यात्रा के बाद झरने तक पहुँच गया। वहाँ उसने अपनी प्यास बुझाई और आगे की यात्रा पर चल निकला। भगवान भी उनकी ही सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता आप करने को तत्पर रहते हैं।

Scanned with CamScanner

श्वास-प्रश्वास की वैज्ञानिकता

श्वासों पर ही हमारा जीवन आधारित है। श्वासों के द्वारा जीवन में प्राणों का संचार बना रहता है। गहरा श्वास हमें सक्रिय, सतेज एवं उत्साहित बनाए रखता है। जब हम गहरा श्वास लेते हैं तो उससे हमारा मन शांत रहता है; क्योंकि वे न्यूरोन सक्रिय नहीं होते, जो मस्तिष्क के उत्तेजना केंद्र से संपर्क करते हैं। गहरा श्वास लेने के लिए अलग न्यूरोन होते हैं या वे न्यूरोन मस्तिष्क के उन हिस्सों से जुड़ते हैं, जो शरीर को शांत व शीतल बनाए रखते हैं। चिंता व तनाव को दूर करने के लिए कहा जाता है कि लंबा और धीमा व गहरा श्वास लेना चाहिए। इस तरह की हिदायत मन को शांति देने के लिए दी जाती है। इसी प्रकार ध्यान की जो पुरानी परंपरा है, उसमें भी शांति के लिए नियंत्रित श्वास का प्रयोग किया जाता है।

अब पहली बार वैज्ञानिकों ने इस बात पर शोध द्वारा मुहर लगाई है कि गहरा श्वास तन व मन को शांत करता है। श्वास लेना शरीर की सबसे आवश्यक व लचीली प्रक्रिया है। हम अपने दिल की धड़कनों को अपनी मरजी से बदल नहीं सकते, लेकिन जिस तरह से हम श्वास लेते हैं, उसे बदला जा सकता है। यह हम जान-बूझकर भी कर सकते हैं, जैसे श्वास को थोड़ी देर के लिए रोक लेना, आहें भरना या जँभाई ले लेना। कोशिकाओं के स्तर पर मन व शरीर किस प्रकार श्वास का नियमन करते हैं या फिर श्वास किस तरह मन व शरीर को प्रभावित करता है—यह अब तक एक रहस्य ही बना हुआ है।

लगभग 25 वर्ष पहले लॉस एंजिल्स में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं ने इनसानों सहित जानवरों के ब्रेन स्टेम में 3000 न्यूरोन का छोटा-सा समूह खोजा था। जो आपस में जुड़ा हुआ होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि श्वास के अधिकतर पहलुओं को वह ही नियंत्रित करता है। उन शोधकर्त्ताओं ने इस न्यूरोन को श्वास पेसमेकर का नाम दिया। इसके बाद के वर्षों में यह जानने के लिए कि यह कोशिकाएँ किस तरह काम करती हैं, कोई खास काम नहीं हुआ है; लेकिन हाल ही में स्टेनफोर्ड, कैलिफोर्निया व अन्य विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों ने आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करना शुरू किया, ताकि इससे संबंधित न्यूरोनों का अध्ययन किया जा सके।

वैज्ञानिकों ने आखिरकार 65 अलग प्रकार के न्यूरोनों की पहचान इसमें की है, जिनमें से प्रत्येक के पास श्वास के किसी खास पहलू का नियमन करने की विशिष्ट जिम्मेदारी है। वैज्ञानिकों ने इस विचार की पुष्टि एक उल्लेखनीय अध्ययन में की, जो पिछले साल 'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इस अध्ययन में वैज्ञानिकों ने चूहों को एक प्रकार की पेसमेकर कोशिका पर विकसित होने दिया। जब वैज्ञानिकों ने चूहों में एक वायरस इंजेक्ट किया, जो केवल उन्हीं कोशिकाओं को मारता है तो चूहों ने गहरा श्वास लेना बंद कर दिया। इनसानों की तरह चूहे भी आमतौर से कुछ मिनटों के बाद गहरा श्वास लेते हैं। इन कोशिकाओं से आदेश न मिलने पर गहरा श्वास लेना बंद हो गया।

इसमें दो राय नहीं हैं कि यह अध्ययन मील का पत्थर था, लेकिन इससे पेसमेकर व अन्य न्यूरोनों की क्षमताओं पर नए सवाल खड़े हो गए। इसलिए अभी हाल ही में हुए अध्ययन में जो 'साइंस' पत्रिका में प्रकाशित हुआ है—शोधकर्त्ताओं ने ध्यानपूर्वक चूहों में श्वास संबंधी एक अन्य प्रकार के न्यूरोन को विकल किया। इससे पहले तो चूहों में कोई परिवर्तन नजर नहीं आया। वह पहले की तरह ही गहरा श्वास ले रहे थे, लेकिन जब उन्हें एक अलग वातावरण में रखा गया, जहाँ ऐसी घुटन थी कि तेज-तेज श्वास लेने की जरूरत थी तो वे चूहे एकदम शांत बैठे रहे।

ऐसा क्यों हुआ, इसे बेहतर तरीके से जानने के लिए शोधकर्त्ताओं ने चूहों के न्यूरोन को देखा कि विकल न्यूरोन किस तरह से मस्तिष्क के अन्य हिस्सों से जुड़ा हो सकता है। मालूम यह हुआ कि उस खास न्यूरोन का सीधा संबंध मस्तिष्क के उस हिस्से से था, जो उत्तेजना उत्पन्न किया करता है। यह क्षेत्र मस्तिष्क के अन्य हिस्सों को संकेत देता है कि हम जाग जाएँ, सतर्क हो जाएँ और कभी-कभी अधिक व्याकुल या चिंतित हो जाएँ।

Scanned with CamScanner

जिन चूहों के न्यूरोन को विकल किया गया था, उनमें मस्तिष्क का यह क्षेत्र शांत रहा। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जिन न्यूरोनों को विकल किया गया था, वे आमतौर से पेसमेकर के भीतर अन्य न्यूरोनों की गतिविधियों को पहचानते हैं और तेजी से श्वास लेने व गंध को जोर से सूँघने की प्रक्रिया को अंजाम देते हैं। इसके बाद विकल किए गए न्यूरोन मस्तिष्क को सतर्क करते हैं कि चूहे में कुछ चिंताजनक घट रहा है। वह जोर-जोर से श्वास ले रहा है और मस्तिष्क को चाहिए कि वह चिंता के तंत्र को गतिशील कर दे। इस प्रकार तेज-तेज कुछ श्वास लेने के बाद चिंता की स्थिति आ जाती है और तेज फीडबैक लूप के कारण चूहा ज्यादा तेज सूँघने या श्वास लेने लगता है और अधिक चिंतित हो जाता है।

चूँकि न्यूरोनों को विकल करने से यह तंत्र शुरू ही नहीं हुआ, इसलिए चूहे शांत बैठे रहे। नतीजा यह है कि जब हम गहरा श्वास लेते हैं तो उससे हमारा मन शांत रहता है; क्योंकि वह न्यूरोन सक्रिय नहीं होते, जो मस्तिष्क के उत्तेजना केंद्र से संपर्क करते हैं। विज्ञान की पहुँच भले ही वहाँ तक नहीं हो, लेकिन इस प्रयोग से यह तो पता चलता ही है कि प्राणायाम से मस्तिष्क शांत एवं शीतल हो सकता है, लेकिन वैज्ञानिक पेसमेकर के भीतर सभी प्रकार के न्यूरोनों और उनकी गतिविधियों का अध्ययन जारी रखने की योजना बनाए हुए हैं।

अब तक जो अध्ययन हुए हैं, उनमें सिर्फ चूहों पर प्रयोग किया गया है, इनसानों पर नहीं, लेकिन इनसानों के श्वास पेसमेकर भी चूहों से काफी मिलते-जुलते हैं। भले ही यह बात शुरुआती है, लेकिन इस शोध से प्राचीन धारणा के सत्य होने को बल मिलता है। डॉ. क्रासनाउ का कहना है कि माताएँ हमेशा से ही सही थीं। जब वे हमें परेशान व गुस्से में देखकर हमसे कहा करती थीं—"रुको और गहरी श्वास लो और ऐसा करते ही हम शांत हो जाया करते थे।" अतः हमें गहरा श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए और अपने अनुकूल प्राणायाम का भी अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के अनगिनत लाभ हैं और ये वैज्ञानिक शोधें यह प्रमाणित करती हैं कि नियमित प्राणायाम करने से हम सदा स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सकते हैं। ❑

एक गधा पीठ पर अनाज की भारी बोरी लादे चल रहा था। देवर्षि नारद वहाँ से निकले तो उन्होंने गधे के निकट से गुजर रही एक चींटी को झुककर प्रणाम किया। गधे को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपनी जिज्ञासा नारद मुनि के समक्ष रखी। देवर्षि बोले—"वत्स! यह चींटी बड़ी कर्मयोगी है, निष्ठापूर्वक अपना कार्य करती है। देखो, कितनी बड़ी चीनी की डली लिए जा रही है। इसीलिए मैंने इसकी निष्ठा को नमन किया।" गधा क्रोधित हुआ और बोला—"प्रभु! यह अन्याय है। इससे ज्यादा बोझ मैंने उठा रखा है तो मुझे ज्यादा बड़ा कर्मयोगी कहलाना चाहिए।" देवर्षि हँसे और बोले—"पुत्र! कार्य को भार समझकर करने वाला कर्मयोगी नहीं कहलाता, बल्कि वो कहलाता है, जो उसे अपना दायित्व समझकर प्रसन्नतापूर्वक निभाता है।" गधे की समझ में कर्मयोग का मर्म आ गया था।

Scanned with CamScanner

माँ भारती की अनन्य उपासिका -- भगिनी निवेदिता

स्कॉटलैंड के नेशनल पार्क में स्वामी विवेकानंद का बहुत ही ओजस्वी भाषण संपन्न हुआ। अपने भाषण में उन्होंने कहा—''संसार का निर्माण करने के लिए थोड़े से लोगों की ही जरूरत है। ज्यादा नहीं, बल्कि सिर्फ बीस लोग मिल जाएँ तो भी काफी हैं। सच्चा आत्मसमर्पण करने वाले सिर्फ बीस लोकसेवी मिल जाएँ तो मैं दुनिया की तसवीर ही बदल दूँ।''

पार्क में उपस्थित लोगों ने उनके भाषण को खूब पसंद किया। भाषण के दौरान बीच-बीच में जोरदार तालियाँ बजती रहीं। स्वामी जी की खूब सराहना भी की गई, किंतु सच्चे आत्मसमर्पण वाली उनकी माँग पूरी करने के लिए वहाँ सैकड़ों की संख्या में उपस्थित लोगों में से एक भी तैयार न हुआ।

दूसरे दिन प्रात:काल स्वामी जी जब सोकर उठे तो उन्हें दरवाजे से सटी एक महिला दिखाई दी। वह उनके समक्ष हाथ जोड़े खड़ी थी। स्वामी जी इतने सवेरे उस महिला को देखकर विस्मित हुए। उन्होंने बड़ी विनम्रतापूर्वक उस महिला का परिचय पूछा। परिचय पाने के बाद उन्होंने कहा—''देवी! आप इतनी सुबह यहाँ क्यों आई हैं? आपका क्या प्रयोजन है? आप ठीक तो हैं न?'' उस महिला ने विनम्रतापूर्वक कहा—''मैं पूर्णतया स्वस्थ और कुशल हूँ।'' यह सुन स्वामी जी बोले—''देवी! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।''

वह महिला कुछ बोल पाती, उससे पहले ही उसका गला भर आया। उसकी आँखों में आँसू भर आए। आँखों में आँसू और भर आए कंठ से उसने स्वामी जी से कहा—''स्वामी जी! कल अपने उद्‌बोधन में आपने दुनिया की तसवीर बदल देने के लिए सच्चे मन से आत्मसमर्पण करने वाले बीस साथियों की माँग की थी। बाकी उन्नीस कहाँ से आएँगे यह मैं नहीं जानती, परंतु एक मैं तो आपके सामने हूँ। इस समर्पित मन और मस्तिष्क का आप विश्वनिर्माण के लिए चाहे जैसा उपयोग करना चाहें, कर सकते हैं।'' उस महिला के सच्चे समर्पण को देखकर स्वामी जी गद्‌गद हो गए।

स्वामी विवेकानंद जी की आँखों में भी खुशी के आँसू भर आए। वह महिला कोई और नहीं, बल्कि आयरलैंड के काउंटी टाइसेन में जन्मी मार्गरेट एलिजा बेथ नोबल थी, जो आगे चलकर सिस्टर निवेदिता के रूप में माँ भारती की सच्ची उपासिका बनी। उसके पिता सैम्युल रिचमंड नोबल एक पादरी थे और उन्होंने अपनी पुत्री को मानवता की सेवा की सीख दी थी। मार्गरेट सिर्फ 10 वर्ष की थी, तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई और उसका पालन-पोषण उसके नाना हैमिल्टन ने किया। उसने हैलीफैक्स कॉलेज से शिक्षा पूरी की और भौतिकी, कला, संगीत, साहित्य समेत कई विषयों का गहन अध्ययन किया। जब वह शिक्षिका बनीं तब उनकी उम्र महज 17 साल थी।

प्रथमत: उनने केस्विक में बच्चों को पढ़ाने का काम किया और बाद में स्वयं की इच्छा से एक विशाल विद्यालय की स्थापना की, जिसका मूल उद्‌देश्य गरीब लड़के-लड़कियों को शिक्षित करना था और समाज का विकास करना था। उनके इस तरह के महान कार्य से उनका नाम जल्द ही पूरे इंग्लैंड में प्रसिद्ध हो गया। अपने पिता एवं अपने महाविद्यालयीन प्रोफेसर से उनने कई मूल्यवान शिक्षाएँ प्राप्त की थीं, जैसे कि मानवता की सेवा भगवान की सेवा करने के बराबर है। उन शिक्षाओं को वो अपने चरित्र से चरितार्थ करने लगी थीं।

सामाजिक-धार्मिक होने के नाते लंदन के कई पत्र-पत्रिकाओं में वो लिखती थीं। शादी करने जा रही मार्गरेट के मंगेतर की मौत एक दुर्घटना में हो गई, जिसके बाद सांसारिक आकर्षणों और प्रलोभनों से उनका मोह भंग हो चुका था और अब ईश्वर के मार्ग पर वह चलना चाहती थीं। ईश्वरीय जीवन जीना चाहती थीं। समाज की सेवा के लिए जीना चाहती थीं। कहते हैं कि यदि मन में ईश्वरीय जीवन जीने की तड़प हो, समर्पण हो तो सर्वव्यापी, सर्वज्ञ ईश्वर उसे वह अवसर किसी-न-किसी रूप में अवश्य उपलब्ध कराते हैं। उसे वे ईश्वरीय यंत्र, उपकरण अवश्य बनाते हैं।

Scanned with CamScanner

देखते-देखते अब वह घड़ी भी आ गई, जब अमेरिका में ओजस्वी भाषण देने के बाद स्वामी विवेकानंद का सन् 1895 में इंग्लैंड आगमन हुआ। जब मार्गरेट को स्वामी जी के आगमन की जानकारी मिली तो वे उनके भाषण को सुनने स्कॉटलैंड नेशनल पार्क पहुँचीं। चूँकि उनमें करुणा, प्रेम, सेवा, पवित्रता आदि दिव्य गुणों के संस्कार नैसर्गिक रूप से मौजूद थे, इसलिए स्वामी जी के आध्यात्मिक संदेश को सुनकर मानो वे आध्यात्मिक रंग से सराबोर हो गईं और स्वामी जी से मिलने के निश्चय के साथ लेडी मार्गसन के आवास पर जा पहुँचीं, जहाँ स्वामी जी ठहरे हुए थे। आज प्रभु, इच्छा व प्रेरणा से दोनों एकदूसरे के सामने खड़े थे। मार्गरेट स्वामी जी के तेजस्वी व्यक्तित्व और वेदांत दर्शन से बहुत प्रभावित हुईं।

आज एक शिष्य को गुरु मिल गया था। अत: दोनों गद्‌गद थे। स्वामी विवेकानंद के आह्वान पर मार्गरेट ने भारत आने का निर्णय लिया और 28 जनवरी, 1898 को वो कलकत्ता पहुँच गईं। स्वामी विवेकानंद ने उन्हें भारतीय दर्शन, इतिहास, साहित्य, आम जनजीवन, सामाजिक रीतियों और महान व्यक्तियों के बारे में बताया। प्राचीन और आधुनिक विकासशील भारत के प्रति उन्होंने मार्गरेट के मन में प्रेम भी जगाया।

17 मार्च, 1898 को मार्गरेट की भेंट श्रीरामकृष्ण परमहंस की पत्नी श्रीमाँ शारदा से हुई। श्रीमाँ ने उन्हें बंगाल की कूकी अर्थात छोटी लड़की कहकर बुलाया। श्रीमाँ के महाप्रयाण तक निवेदिता उनकी विशिष्ट करीबियों में से एक रहीं। श्रीमाँ भी उन्हें सदा अपनी पुत्रीवत् स्नेह देती रहीं और उन्हें बेटी कहकर बुलाती रहीं और आखिर वह शुभ घड़ी भी आ गई, जिसका मार्गरेट को इंतजार था। स्वामी विवेकानंद ने मार्गरेट को 25 मार्च, 1898 को दीक्षा देकर अपनी शिष्या बनाया। दीक्षा के बाद स्वामी विवेकानंद ने उन्हें नया नाम दिया—निवेदिता।

बाद में उनके नाम के आगे 'सिस्टर' का संस्कृत शब्द 'भगिनी' भी जुड़ गया और इस प्रकार 'मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल', 'भगिनी निवेदिता' बन गईं। 'निवेदिता' अर्थात ईश्वर को समर्पित। स्वामी विवेकानंद ने दीक्षा देते हुए निवेदिता को कहा—"पुत्री! उस महान व्यक्ति का अनुसरण करो, जिसने 500 बार जन्म लेकर अपना जीवन लोक-कल्याण के लिए समर्पित किया और फिर बुद्धत्व प्राप्त किया। वास्तव में निवेदिता ने अपने जीवन का संपूर्ण समय स्त्री शिक्षा, स्वावलंबन प्रशिक्षण, पीड़ितों की सेवा, समाजसेवा, रामकृष्ण मिशन व माँ भारती की सेवा में आहूत कर दिया।

वे देश की आजादी के लिए भी महत्त्वपूर्ण काम करती रहीं। भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों को शिक्षित लोगों तक पहुँचाने के लिए उनने अँगरेजी भाषा में पुस्तकें लिखीं और प्रव्रज्या कर अपने व्याख्यानों के माध्यम से उनका प्रचार किया।

स्वामी विवेकानंद, जोसेफिन मैक्लोइड और सारा बुल के साथ भगिनी निवेदिता ने कश्मीर समेत भारत के कई हिस्सों का भ्रमण किया। मई, 1898 में वे विवेकानंद के साथ हिमालय भ्रमण के लिए गईं। अल्मोड़ा में उनने पहली बार ध्यान की कला सीखी। वर्षों की गुलामी के कारण भारतीय जनमानस में जो हीनभावना पनप आई थी, उसे वे बखूबी समझती थीं और भारतीयता को लेकर उनके मन में इतना गहरा गौरव था कि एक बार उनने कर्मयोगिन पत्रिका में अपने लेख में सीधे-सीधे लिखा कि क्या भास्कराचार्य और शंकराचार्य के देशवासियों को न्यूटन और डार्विन के देशवासियों के सामने खुद को हीन समझना चाहिए? नहीं। हरगिज नहीं; क्योंकि भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों, मानवीय मूल्यों व वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना व ज्ञान-विज्ञान का विश्व में अन्यत्र कोई मुकाबला नहीं।

वास्तव में भगिनी निवेदिता ने भारत को, भारत की आकांक्षाओं को, भारतीयों के सपनों को, भारतीय संस्कृति को, भारत की परंपराओं को, भारतीयों की भावनाओं को इतने अंदर तक आत्मसात् कर लिया था कि वो अपने ही देश (इंग्लैंड) के लोगों का झूठ और भारतीयों को झूठा कहना बरदाश्त नहीं कर पाती थीं। अपने विद्यालय में उन्होंने वंदे मातरम् का गान छात्राओं और अध्यापकों के लिए अनिवार्य कर दिया था।

अपना देश छोड़कर पूरी जिंदगी भारत और भारतीयों के नाम करने वाली इस महिला ने सचमुच इस देश के लिए कई मोर्चों पर काम किया। जाने-माने भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु की भी निवेदिता ने काफी मदद की थी। न केवल धन से, बल्कि विदेशों में अपने रिश्तों के जरिए भी। बोस की मदद करने के लिए रवींद्रनाथ टैगोर ने भी भगिनी निवेदिता की तारीफ की थी।

Scanned with CamScanner

इसके अलावा निवेदिता अनुशीलन समिति के युवा क्रांतिकारियों के संपर्क में भी थीं। सीधे क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग न लेकर वे अलग-अलग तरीकों से उनकी मदद करती थीं। भगिनी निवेदिता की किताब 'काली : दि मदर' से ही प्रभावित होकर रवींद्रनाथ टैगोर ने पहली बार भारत माता की तसवीर बनाई थी।

विवेकानंद के लिए तो निवेदिता उनकी शिष्या और पुत्री दोनों थीं। निवेदिता ने स्वामी विवेकानंद और अपने रिश्तों को लेकर एक किताब लिखी—'दि मास्टर : एज आई सॉ हिम'। इस पुस्तक में निवेदिता ने उन्हें किंग और स्वयं को उनकी आध्यात्मिक बेटी कहा है। स्वामी विवेकानंद ने भी निवेदिता को लेकर अँगरेजी में एक कविता लिखी थी, जिसके अनुवादित भाव कुछ इस प्रकार हैं—

हृदय है माँ का, नायक-सी इच्छा
है दक्षिणी हवा की मधुर मिठास,
पवित्र आकर्षण और शक्ति जो बसती है,
आर्यन वेदियों पर, ज्वलंत मुक्त,
ये सब दिव्य गुण आपके, और बहुत से हैं,
आप भारत की भावी पुत्री हो
मित्र, मालकिन, सेवक हो।

निवेदिता का अपने गुरु के प्रति समर्पण भी मानो अपने शीर्ष पर था। वे जीवनभर ना सिर्फ अपने गुरु के बताए पदचिह्नों पर चलती रहीं, बल्कि जब स्वामी विवेकानंद ने अपनी महासमाधि ली तो सुबह सात बजे से लेकर दोपहर एक बजे तक भगिनी निवेदिता हाथ का पंखा लेकर उनके पार्थिव शरीर पर बिना रुके व बिना थके हवा करती रहीं।

स्वामी जी के शरीर को भगवा कपड़े से ढक दिया गया था। स्वामी जी के पास बैठी निवेदिता के मन में ऐसी इच्छा हो रही थी कि स्वामी जी के शरीर पर ओढ़ाए हुए भगवा वस्त्र का एक टुकड़ा उनके पास भी हो, ताकि स्वामी जी की अंतिम स्मृति के तौर पर वे उसे सँभालकर रख सकें, परंतु उनको भारतीय परंपराओं का ख्याल था।

ऐसे में स्वामी जी के शिष्य स्वामी सर्वदानंद ने उन्हें उस वस्त्र से फाड़कर एक टुकड़ा लेने की इजाजत दे भी दी, लेकिन उनकी हिम्मत नहीं हुई। सर्वज्ञ, सर्वव्यापी ईश्वर ने निवेदिता की सुन ली और स्वयं उनके गुरु विवेकानंद ने भी। स्वामी विवेकानंद के शव को मठ में एक बिल्ववृक्ष के पास रखा गया था।

इसी स्थान पर स्वामी जी ने अपनी देह का दाह करने की इच्छा जताई थी। चिता सजाई गई और चंदन काष्ठ से प्रज्वलित अग्नि को उनका शरीर सौंप दिया गया। निवेदिता शिशु के समान धरती पर लोट-लोटकर रोने लगीं। फिर सहसा हवा का एक तेज झोंका आया और चिता से गेरूए वस्त्र का एक टुकड़ा उड़कर निवेदिता की गोद में आ गिरा, जिसे उन्होंने आशीर्वाद के रूप में उठा लिया।

भगिनी निवेदिता दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में दार्जिलिंग गईं। वहीं उनकी सेहत खराब हो गई। 31 अक्टूबर, 1911 को 44 वर्ष की उम्र में उनने अपने स्थूलशरीर का परित्याग कर दिया। उनकी मृत्यु के बाद बने मेमोरियल पर लिखा है—'हेयर रेस्ट्स सिस्टर निवेदिता, हू गेव हर ऑल टू इण्डिया' अर्थात यहाँ भगिनी निवेदिता सोई है, जिसने अपना सर्वस्व भारत को समर्पित कर दिया। सचमुच धन्य है भगिनी निवेदिता की गुरुभक्ति। धन्य है उनकी ईश्वरभक्ति। धन्य है उनके द्वारा की गई माँ भारती की अभ्यर्थना, उपासना और आराधना। सचमुच वे अपने गुरु की सच्ची उपासिका-आराधिका थीं। माँ भारती की सच्ची व अनन्य सेविका थीं।

उनकी गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति एवं उनका समर्पण सचमुच हम सभी के लिए प्रेरणादायी है। भगिनी निवेदिता-सा सच्चा समर्पण व सच्ची श्रद्धा हो तो सचमुच हर साधक का जीवन धन्य एवं निहाल होने के साथ गौरवान्वित हो सकता है। ❑

अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥

—ऋग्वेद 10/71/5

जो सदाचरण का पालन नहीं करते, उन्हें शिक्षित होने पर भी उसी प्रकार लाभ नहीं मिलता, जैसे जादू की गाय दूध नहीं देती।

Scanned with CamScanner

अहम् से परम की यात्रा है योग

एक छोटी-सी चिड़िया वर्षों से एक पिंजड़े में बंद थी। अपने समान अन्य पक्षियों को आसमान में उड़ते देख उसका मन भी असीम आकाश में उड़ जाने को व्यग्र हो उठता था। वो उड़ने का बार-बार प्रयास करती, पर उसके पंख हर बार पिंजड़े में उलझकर घायल हो जाते। वो सोचती कि काश! मैं भी इस पिंजड़े से मुक्त हो पाती, परंतु ऐसा कहाँ संभव था? वो तो वर्षों से पिंजड़े से मुक्त होकर उन्मुक्त गगन में उड़ने के सपने बुनती आ रही थी, किंतु अब भी उसी पिंजड़े में कैद थी।

उन्मुक्तता में मिलने वाले आनंद की कल्पना कर वो बेचारी रोज पिंजड़े में सो जाया करती। जो भी रूखे-सूखे दाने मिलते, उन्हें अनमने ढंग से खाती और सिसककर रोती-बिलखती रहती। एक दिन उसके मन में अचानक ख्याल आया कि क्यों न इस पिंजड़े से निकल भागने की कोई युक्ति सोची व निकाली जाए। कुछ दिनों तक तो वह ताना-बाना बुनती रही। खेल के क्रम में एक बच्चे ने एक दिन उस चिड़िया के साथ खेलने को उस पिंजड़े को खोला कि तभी वह चिड़िया उड़ गई।

वह उड़ती-उड़ती एक बड़े वृक्ष की डाली पर आ बैठी। पहले तो उसने जी भरकर उस वृक्ष की डाली में लगे मधुर फलों को चखा और अपनी थकान मिटाई। तत्पश्चात वह पुनः उड़ गई। बचपन से अब तक वह पिंजड़े में कैद रही थी और उसे आज पहली बार इस विशाल जगत् को देखने का अवसर मिला था। वह रह-रहकर एक बाग से दूसरे बाग की सैर करती रही तथा विविध प्रकार के मधुर फलों का स्वाद भी लेती रही। झरनों का मीठा जल पीकर तृप्त होती रही। अब वह बड़ी हो गई थी, इसलिए अपने सजातीय पक्षियों के समूह में रहकर जी भरकर मजा करने लगी।

वह कभी बहते हुए झरनों को देखती तो कभी नदी में जल-क्रीड़ा करती। कभी वह नदी की तेज धारा में बहती जा रही लकड़ी के ऊपर बैठकर नौका विहार करने का आनंद लेती तो कभी हवा के झोंकों से हिलते घोंसले में बैठ झूला झूलती। एक दिन अचानक वह समुद्र के ऊपर से उड़ती हुई जाने लगी। उस विशाल समुद्र के ऊपर से उड़ने का आनंद पाकर वह सचमुच अभिभूत थी।

एक दिन चिलचिलाती धूप की तपन से बचने के लिए वह हिमालय के विशाल भूभाग का दिग्दर्शन करती हुई उसके ऊपर से उड़ते हुए हिमाच्छादित हिमालय की बरफीली हवाओं का स्पर्श पाकर खूब आनंदित हुई। दूसरे दिन ऊँचे आकाश में बहुत दूर तक उड़ती रही और आनंद मनाती रही। कभी रात्रि में ऊँचे क्षितिज में चमकते तारों को निहारती तो कभी पूनम के प्रकाश को पाकर प्रफुल्लित होती। इस प्रकार उसका जीवन पूर्णतया बदल गया और वह आनंदित रहने लगी।

उस छोटी-सी चिड़िया की तरह हम भी उन्मुक्त जीना चाहते हैं, परंतु क्या करें? जैसे ही हम मुक्त होने की कोशिश करते हैं, वैसे ही स्वयं को एक पिंजड़े में कैद पाते हैं। उस छोटी-सी चिड़िया की तरह हम भी स्वयं को किसी बंधन में बँधा हुआ पाते हैं; असहाय पाते हैं और दुःखी होते हैं। उस पिंजड़े में बंद हम भी उस चिड़िया की तरह सिसकते व बिलखते हैं। हमारा मन भी उस पिंजड़े से आजाद हो जाने का करता है, किंतु करें क्या? कुछ समझ में नहीं आता।

वास्तव में हमारा अहम् ही वह बंधन है, जिससे हम बँधे हुए हैं। मैं, मेरा शरीर, मेरा परिवार, मेरे रिश्तेदार। हम बस, इसी छोटी-सी परिधि तक सीमित होकर रह गए हैं। वास्तव में अपने भौतिक शरीर को ही हमने अपना सब कुछ मान लिया है। इसलिए हमारा जीवन शरीर तक केंद्रित होकर रह गया है। यह शरीर अनित्य है और शरीर में स्थित आत्मा नित्य एवं शाश्वत है। इस ओर तो कभी हमारा ध्यान ही नहीं गया। हम इंद्रियजन्य सुख को ही सब कुछ मानते रहे। हमारा शरीर हमारी शाश्वत आत्मा का एक वस्त्र मात्र है। इस पर तो हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया। हमने अपने

Scanned with CamScanner

भौतिक शरीर और भौतिक शरीर से जुड़े हुए रिश्ते-नाते मात्र को ही अपना सब कुछ मान लिया।

ये सारे रिश्ते क्षणभंगुर हैं; क्योंकि हमारा भौतिक शरीर ही नश्वर है। इस ओर हमने कभी ध्यान ही कहाँ दिया? इसलिए आत्मा एवं परमात्मा के विषय में हमने कभी सोचा नहीं। हम अब तक देह और मन की इच्छाओं और वासनाओं को ही अपना सर्वस्व मानते रहे और उनकी पूर्ति में ही आनंद ढूँढ़ते रहे, इसलिए तो हम अब तक आत्मा व ईश्वर के परम आनंद से वंचित रहे।

यदि हमें भी आत्मा व परमात्मा के उन्मुक्त गगन में उड़ना और आनंद पाना है तो स्वयं ही अपनी इच्छाओं व वासनाओं के बंधन से मुक्त होना होगा; 'मैं' के बंधन से मुक्त होना होगा। ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि उस पिंजड़े से मुक्त होने के साधन के समान हैं। हमारे विविध धार्मिक, आध्यात्मिक शास्त्रों में वर्णित इन्हीं साधनों का अवलंबन करके कोटिशः साधकों ने अहम् से परम तक की यात्रा की है। सभी ऋषियों व योगियों ने इन्हीं साधनों के सहारे परमात्मा तक की यात्रा पूरी की है।

इन साधनों के सहारे हम भी एक दिन अवश्य ही मुक्त हो सकेंगे और अपने यथार्थस्वरूप को पाकर आत्मा व परमात्मा के परम आनंद में उड़ान भर सकेंगे तथा अध्यात्म के उन्मुक्त क्षितिज में उड़ने के आनंद की अनुभूति कर सकेंगे। निस्संदेह शरीर के मरने के बाद भी जीवात्मा रहती है और जब तक वह अपने यथार्थस्वरूप को नहीं जान लेती, तब तक उसका देहांतरण या पुनर्जन्म होता ही रहता है।

अस्तु मानव जीवन हमारे लिए वरदान है, जिसमें रहकर हम अहम् से परम तक की यात्रा पूरी कर सकते हैं। हमें यह जीवन अहम् से परम की यात्रा पूरी करने के लिए ही मिला है। हमारी इस यात्रा में योग ही हमारा साधन है और साध्य भी।

कोई ब्रह्मज्ञानी गुरु ही हमें योग-अध्यात्म में दीक्षित कर हमें पिंजड़े से मुक्त कराने में सहायक हो सकते हैं। किसी ब्रह्मज्ञ गुरु से दीक्षा लेकर उनसे ब्रह्म के नाम-जप के मंत्र का श्रवण, मनन, निदिध्यासन से या साक्षात् ईश्वर को ही अपना गुरु, अपना सर्वस्व मानकर उनके प्रकाशस्वरूप का हृदय में ध्यान करने से जिस समाधि की प्राप्ति होती है, वही मुक्ति प्राप्त करने का अथवा 'मैं' रूपी पिंजड़े से मुक्त होने का एकमात्र मार्ग है।

इस पिंजड़े से मुक्त होते ही हम भी अपनी ही आत्मा के असीम आकाश में उड़ सकेंगे। स्वयं के भीतर ही संपूर्ण ब्रह्मांड को समाया हुआ देख सकेंगे। अपने अंतस् के असीम आकाश में उड़ते हुए हम भी एक अलौकिक आनंद की अनुभूति कर सकेंगे। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, पाप-पुण्य आदि के बंधन से मुक्त हो कर आत्मिक आकाश में उड़ सकेंगे। उस पिंजड़े से मुक्त होते ही आत्मिक आकाश में उड़ते हुए हमें यह संपूर्ण सृष्टि स्वयं की आत्मा के विस्तार के रूप में महसूस हो सकेगी।

तब हमारे अंतस् में उठने वाली करुणा, प्रेम व संवेदना की ऊँची-ऊँची लहरें व तरंगें हमें सचमुच हर पल आह्लादित एवं आनंदित कर सकेंगी; पुलकित एवं प्रफुल्लित कर सकेंगी। उस प्रबल प्रवाह में 'मैं' स्वयं ही मिटकर बह जाएगा। तब हम सचमुच मानव से देवमानव बन सकेंगे। अस्तु योग व अध्यात्म यात्रा है अहम् से परम की। यह यात्रा है द्वैत से अद्वैत की। इस मानव जीवन में रहकर हमें यह यात्रा पूरी कर ही लेनी चाहिए अन्यथा बार-बार जीवन-मरण के चक्र में हम यों ही पड़ते रहेंगे और पिंजड़े में कैद हो सिसकते-बिलखते रहेंगे। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Scanned with CamScanner

दिव्य स्थल मानसरोवर

भगवान शिव के निवास स्थान कैलास पर्वत के पास स्थित है—कैलास मानसरोवर। यह अद्भुत स्थान रहस्यों से भरा हुआ है। कैलास पर्वत दुनिया के 4 मुख्य धर्मों—हिंदू, जैन, बौद्ध और सिख धर्म का धार्मिक केंद्र है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इसी के पास कुबेर की नगरी है। यहीं से भगवान विष्णु के कर-कमलों से निकलकर गंगा कैलास पर्वत की चोटी पर गिरी थीं, जहाँ प्रभु शिव ने उन्हें अपनी जटाओं में धारण करके धरती पर निर्मल धारा के रूप में प्रवाहित किया था। कैलास पर्वत के ऊपर स्वर्ग और नीचे मृत्युलोक है। शिवपुराण, स्कंदपुराण, मत्स्यपुराण आदि में कैलासखंड नाम से अलग ही अध्याय है, जहाँ इसकी महिमा का गुण-गान किया गया है।

कैलास पर्वत पर साक्षात् भगवान शंकर विराजमान माने गए हैं। इसकी बाहरी परिधि 52 किलोमीटर की है। मानसरोवर पहाड़ों से घिरी झील है, जो पुराणों में 'क्षीरसागर' के नाम से वर्णित है। क्षीरसागर कैलास से 40 किमी. की दूरी पर है व इसी में शेषशय्या पर भगवान विष्णु व देवी लक्ष्मी विराजमान होकर समस्त संसार को संचालित करते हैं। यह क्षीरसागर भगवान विष्णु का अस्थायी निवास है। कैलास पर्वत के दक्षिण भाग को नीलम, पूर्व भाग को स्फटिक, पश्चिम को रूबी और उत्तर को स्वर्ण रूप में माना जाता है।

इस पावन स्थल को भारतीय संस्कृति के हृदय की उपमा दी गई है; जिसमें भारतीय सभ्यता की झलक दिखाई पड़ती है। कैलास पर्वत की तलहटी में कल्पवृक्ष लगा हुआ है। बौद्ध धर्मावलंबियों के अनुसार इसके केंद्र में एक वृक्ष है, जिसके फलों के चिकित्सकीय गुण सभी प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगों का उपचार करने में सक्षम हैं। तिब्बतियों की मान्यता है कि एक संत कवि ने वहाँ वर्षों गुफा में रहकर तपस्या की थी। तिब्बती बोनपाओं के अनुसार कैलास में जो नौ मंजिला स्वस्तिक देखते हैं वह डेमचौक और दोरजे फांगमो का निवास है। बौद्ध भगवान का अलौकिक रूप 'डेमचौक' बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए पूजनीय है। बुद्ध के इस रूप को 'धर्मपाल' की संज्ञा भी वे देते हैं। बौद्ध धर्मावलंबियों का मानना है कि इस स्थान पर आकर उन्हें निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह भी कहा जाता है कि भगवान बुद्ध की माता ने यहाँ की यात्रा की थी।

जैनियों की मान्यता है कि आदिनाथ ऋषभदेव का निर्वाण स्थल 'अष्टपद' यहीं है। कहते हैं कि ऋषभदेव ने आठ पग में कैलास की यात्रा की थी। हिंदू धर्म के अनुयायियों की मान्यता है कि कैलास पर्वत ही मेरु पर्वत है, जो ब्रह्मांड की धुरी है और यह भगवान शंकर का प्रमुख निवास स्थान है। यहाँ देवी सती के शरीर का दायाँ हाथ गिरा था, इसलिए यहाँ एक पाषाण-शिला को उसका रूप मानकर पूजा जाता है। यहाँ एक शक्तिपीठ भी है। कुछ लोगों का मानना यह भी है कि गुरु नानक देव ने भी यहाँ कुछ दिन ठहरकर ध्यान किया था और इसलिए सिक्खों के लिए भी यह एक अत्यंत पवित्र स्थान है।

वैज्ञानिकों के अनुसार यह स्थान धरती का केंद्र है। धरती के एक ओर उत्तरी ध्रुव है तो दूसरी ओर दक्षिणी ध्रुव। दोनों के मध्य स्थित है हिमालय। हिमालय का केंद्र है कैलास पर्वत और मानसरोवर। वैज्ञानिक मानते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप के चारों ओर पहले समुद्र था। इसकी लहरों के टेक्टोनिक प्लेटों से टकराने के कारण हिमालय का निर्माण हुआ। यह घटना अनुमानत: 10 करोड़ वर्ष पूर्व घटी थी। यह एक ऐसा भी केंद्र है, जिसे एक्सिस मुंडी कहा जाता है। एक्सिस मुंडी अर्थात दुनिया की नाभि का आकाशीय ध्रुव और भौगोलिक ध्रुव का केंद्र। यह आकाश और पृथ्वी के बीच संबंध का एक बिंदु है, जहाँ दसों दिशाएँ मिल जाती हैं। रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार एक्सिस मुंडी वह स्थान है, जहाँ अलौकिक शक्ति का प्रवाह होता है और हम इन शक्तियों के साथ संपर्क कर सकते हैं।

कैलास पर्वत और उसके आस-पास के वातावरण का अध्ययन कर चुके रूस के वैज्ञानिकों ने जब तिब्बत के

Scanned with CamScanner

मंदिरों में धर्मगुरुओं से मुलाकात की तो उन्होंने बताया कि कैलास पर्वत के चारों ओर एक अलौकिक शक्ति का प्रवाह है, जिसमें तपस्वी आज भी आध्यात्मिक गुरुओं के साथ टेलीपैथिक संपर्क करते हैं। यदि हम कैलास पर्वत या मानसरोवर झील के क्षेत्र में जाएँगे तो हमको निरंतर एक आवाज सुनाई देगी, जैसे कि कहीं आस-पास में हवाई जहाज उड़ रहा हो, लेकिन ध्यान से सुनने पर यह आवाज 'डमरू' या 'ॐ' की ध्वनि जैसी होती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि हो सकता है कि यह आवाज बरफ के पिघलने की हो और यह भी हो सकता है कि प्रकाश और ध्वनि के बीच इस तरह का समागम होता है कि यहाँ से 'ॐ' की आवाजें सुनाई पड़ती हों।

दावा किया जाता है कि कई बार कैलास पर्वत पर 7 तरह के प्रकाश आसमान में चमकते हुए देखे गए हैं। नासा के वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि हो सकता है कि ऐसा यहाँ के चुंबकीय बल के कारण होता हो। यहाँ का चुंबकीय बल आसमान से मिलकर कई बार इस तरह की चीजों का निर्माण कर सकता है। हिमालयवासियों का कहना है कि हिमालय पर यति मानव रहता है। कोई इसे सफेद भालू कहता है; कोई जंगली मानव तो कोई हिममानव।

कुछ वैज्ञानिक इसे निएंडरथल मानव मानते हैं। विश्वभर के करीब 30 से ज्यादा वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि हिमालय में बरफीले इलाकों में हिममानव मौजूद हैं। यह भी कहा जाता है कि यहाँ आस-पास दुनिया का सबसे दुर्लभ मृग—कस्तूरी मृग है। इस मृग की कस्तूरी बहुत ही सुगंधित और औषधीय गुणों से युक्त होती है, जो उसके शरीर के एक हिस्से की ग्रंथि में एक पदार्थ के रूप में संगृहीत होती है।

कैलास पर्वत एक विशालकाय पिरामिड है, जो 100 छोटे-छोटे पिरामिडों का केंद्र है। कैलास पर्वत की संरचना कंपास के 4 द्विक बिंदुओं के समान है और एकांत स्थान पर स्थित है, जहाँ कोई भी बड़ा पर्वत नहीं है। कैलास पर्वत समुद्र सतह से 21668 फुट ऊँचा है तथा हिमालय से उत्तरी क्षेत्र में तिब्बत में स्थित है। चूँकि तिब्बत चीन के अधीन है, अत: कैलास चीन में आता है। मानसरोवर झील से घिरा होना कैलास पर्वत की धार्मिक महत्ता को और अधिक बढ़ाता है।

यहाँ चारों ओर बहुत ऊँचे बरफीले पहाड़ हैं; जहाँ कुछ पहाड़ों की ऊँचाई 3500 मीटर से भी अधिक है। कैलास पर्वत की ऊँचाई तो लगभग 21668 फुट है। कैलास पर्वत की 4 दिशाओं से 4 नदियों का उद्गम हुआ है—ब्रह्मपुत्र, सिंधु, सतलज व करनाली। इन नदियों से ही चीन की कुछ नदियाँ भी निकली हैं। कैलास के चारों ओर विभिन्न जानवरों के मुख हैं, जिनमें से नदियों का उद्गम होता है। पूर्व में अश्वमुख है। पश्चिम में हाथी का मुख है। उत्तर में सिंह का मुख है। दक्षिण में मोर का मुख है।

कैलास मानसरोवर के पास ही यमद्वार बताया जाता है। यहीं से होकर कैलास स्पर्श स्थान तथा कैलास जी की परिक्रमा शुरू करनी होती है। यमद्वार से करीब 12 किमी० की यात्रा प्रारंभ होती है। सुनसान रास्ते के दोनों तरफ पथरीले और बरफ से ढँके पहाड़ दिखाई देते हैं। दोनों पहाड़ों के बीच बरफ की नदी अपने अस्तित्व का एहसास कराती है। कैलास की संपूर्ण परिक्रमा लगभग 50 किलोमीटर की है; जिसे यात्री प्राय: तीन दिनों में पूरा करते हैं। यह परिक्रमा कैलास शिखर के चारों ओर के कमलाकार शिखरों के साथ होती है। कैलास शिखर अस्पृश्य है। यात्रा मार्ग में लगभग ढाई किलोमीटर की सीधी चढ़ाई करके ही इसे स्पर्श किया जा सकता है। यह चढ़ाई पर्वतारोहण की विशिष्ट तैयारी के बिना संभव नहीं है।

मानसरोवर झील लगभग 320 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैली हुई है। इसके उत्तर में कैलास पर्वत तथा पश्चिम में रसातल झील है। संस्कृत शब्द मानसरोवर—मानस तथा सरोवर को मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है—मन का सरोवर। कहते हैं कि मानसरोवर वह झील है, जहाँ माता पार्वती स्नान करती थीं। मान्यतानुसार वे आज भी वहीं स्नान करतीं हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि यह अभी तक रहस्य है कि ये झीलें प्राकृतिक तौर पर निर्मित हुई हैं या कि इन्हें ऐसा बनाया गया है। हालाँकि पुराणों के अनुसार समुद्र तल से 17 हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित 300 फुट गहरी मीठे पानी की इस मानसरोवर झील की उत्पत्ति भगीरथ की तपस्या से भगवान शिव के प्रसन्न होने पर हुई थी। पुराणों के अनुसार भगवान शंकर द्वारा प्रकट किए गए जल के वेग से जो झील बनी, कालांतर में उसी का नाम 'मानसरोवर' पड़ा।

एक अन्य मान्यता के अनुसार परमपिता परमेश्वर के आनंद-अश्रुओं को भगवान ब्रह्मा ने अपने कमंडलु में समेट लिया था तथा इस भूलोक पर त्रियष्टकं (तिब्बत) स्वर्ग

Scanned with CamScanner

स्थान पर 'मानसरोवर' की स्थापना की। शाक्तग्रंथ के अनुसार देवी सती का दायाँ हाथ इसी स्थान पर गिरा था, जिससे यह झील तैयार हुई, इसलिए यहाँ एक पाषाण- शिला को उनका रूप मानकर पूजा जाता है। इसलिए इसे 51 शक्तिपीठों में से एक माना गया है। मान्यता है कि कोई व्यक्ति मानसरोवर में एक बार डुबकी लगा ले तो वह 'रुद्रलोक' पहुँच सकता है। मानसरोवर पहाड़ों से घिरी झील है, जिसे पुराणों के रचनाकार 'क्षीरसागर' कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि महाराज मांधाता ने मानसरोवर झील की खोज की और कई वर्षों तक इसके किनारे तपस्या की थी।

यहाँ दो सरोवर मुख्य हैं। पहला मानसरोवर, जो कि दुनिया में शुद्ध पानी की उच्चतम झीलों में से एक है और जिसका आकार सूर्य के समान है। दूसरी यहाँ पर 250 वर्गकिलोमीटर क्षेत्र में फैली, 15010 फुट समुद्र तल से ऊँचाई पर स्थित राक्षस झील है, जो कि खारे पानी की उच्चतम झीलों में से एक है। इसका आकार चंद्रमा के समान है।

ये दोनों झीलें सौर और चंद्र बल को प्रदर्शित करती हैं; जिनका संबंध सकारात्मक और नकारात्मक ऊर्जा से है। जब दक्षिण से देखते हैं तो इसे एक स्वस्तिक चिह्न के रूप में देखा जा सकता है। इन दो सरोवरों के उत्तर में कैलास पर्वत है। इसके दक्षिण में गुरला पर्वतमाला और गुरला शिखर है। इस प्रकार मानसरोवर का क्षेत्र एक दिव्य सिद्ध क्षेत्र है, जो एक रहस्यमयी ऊर्जा का केंद्र भी है। ❑

घोर अकाल पड़ा था। लोग दाने-दाने के लिए भटक रहे थे। भगवान बुद्ध से जनता का यह कष्ट देखा नहीं जा रहा था। उन्होंने नगर के सभी संपन्न व्यक्तियों को एकत्रित किया तथा उनसे प्रजा की पीड़ा दूर करने का कुछ प्रबंध करने को कहा। नगर का सबसे बड़ा व्यापारी बोला—"प्रभु मैं अपना समस्त धन व अन्न देने को प्रस्तुत हूँ, किंतु वह इतना नहीं है कि पूरी प्रजा को एक सप्ताह भी भोजन दिया जा सके।" स्वयं नरेश ने भी अपनी असमर्थता प्रकट की। संपूर्ण सभा मौन हो गई। सभी ने अपने मस्तक झुका लिए।

तथागत चिंतित हो गए। इतने में सभा में सबसे पीछे खड़ी फटे कपड़ों वाली भिखारिन मस्तक झुकाकर हाथ जोड़कर बोली—"प्रभु आज्ञा दें तो मैं सभी अकाल पीड़ितों को भोजन दूँगी।" किसी ने क्रोधपूर्वक पूछा—"तेरे यहाँ क्या खजाना गड़ा है कि तू सबको भोजन देगी?" बिना हिचके, बिना भय के उस भिखारिन ने कहा—"मैं तो भगवान की कृपा के भरोसे श्रम करूँगी। मेरा कोष तो आप सबके घर में है। आपकी उदारता से ही मेरा यह भिक्षापात्र अक्षय बनेगा।" सचमुच उस भिखारिन का भिक्षापात्र अक्षयपात्र बन गया। वह जहाँ भिक्षा लेने गई, लोगों ने उसके लिए अपने अक्षय भंडार खोल दिए और उस अकाल के समय में कोई भूखा न रहा।

Scanned with CamScanner

परिवाररूपी संस्कारशाला को सहेजने की आवश्यकता

परिवार-व्यवस्था भारतभूमि की एक ऐसी विशेषता रही है, जिसे गृहस्थ आश्रम के रूप में ऋषियों ने स्थापित किया था। घर में बड़े बुजुर्गों का सान्निध्य, संरक्षण एवं मार्गदर्शन इसकी सहज उपलब्धि रही है। समय के साथ यह व्यवस्था थोड़ा डगमगा भले ही गई हो, लेकिन विकसित देशों की तुलना में जहाँ परिवार-व्यवस्था पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हो चुकी है, यहाँ स्थिति अब भी बेहतर है।

भौतिक प्रगति के बावजूद वहाँ की आंतरिक स्थिति विपन्न है। परिवार टूट चुके हैं, नई पीढ़ी के लिए बुजुर्गों से भरे-पूरे परिवार के दर्शन दुर्लभ हो चले हैं। साथ ही बुजुर्ग अकेले रहने के लिए अभिशप्त हैं, जिनकी देख-भाल करने वाला कोई परिवारजन नहीं होता और वे किसी तरह रोते-कलपते अपने अंतिम दिन बिताते देखे जाते हैं। ऐसे में घर पर बच्चों को वह छत्रछाया नहीं मिल पाती, जिसकी गोद में उनका सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो सके।

ऐसे में उनके भावनात्मक विकास का एक कोना रीता रह जाता है, जिसकी भरपाई फिर किसी भी रूप में ताउम्र नहीं हो पाती; जबकि बुजुर्गों की गोद में खेलता-कूदता विकसित होता बचपन न जाने कितनी सारी बातें खेल-खेल में नाना-नानी, दादा-दादी की कथा-कहानियों के सहारे सीख जाता था। माता-पिता भी बुजुर्गों के घर में होने पर निश्चिंत भाव से अपने काम में लग जाया करते थे। इसके अभाव में कितने एकल परिवारों में शिशुओं को नौकर-नौकरानियों के हवाले छोड़ना पड़ता है, जिनसे उस भावनात्मक आपूर्ति की आशा नहीं की जा सकती, जो परिवार के बुजुर्ग अभिभावकों के सान्निध्य में सहज रूप में हो जाती थी।

वस्तुतः संयुक्त परिवार-व्यवस्था सद्गुणों के अभ्यास एवं विकास की प्राथमिक पाठशाला भी है। बच्चे ही नहीं, बड़ों को भी इसमें मानवीय प्रकृति को समझने, आपसी तालमेल बिठाने और जीवन जीने का आवश्यक प्रशिक्षण मिलता है और व्यक्ति के आंतरिक परिष्कार के साथ सर्वांगीण विकास का प्रयोजन इस प्रयोगशाला में पूर्ण हो जाता है। ऋषियों ने इसीलिए गृहस्थ आश्रम के रूप में इसे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ाव माना है। परमपूज्य गुरुदेव ने इसे तपोवन की संज्ञा दी।

गृहस्थ में प्रवेश वास्तव में स्वयं में एक बड़ा प्रयोग है, जो व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य—दोनों विकासों को सुनिश्चित करता है। आवश्यकता बस, समझदारी व धैर्य के साथ इसके महत्त्व को समझने व इसकी तपन को सहन करने की है। समय के साथ यह तपन अजस्र रूपों में फलित होती है। यदि परिवार में बड़े-बुजुर्गों का सान्निध्य हो तो फिर यह परिष्कार अधिक बेहतर तथा समग्र रूप में हो पाता है।

बिना परिवार के इक्कड़ व्यक्ति का भावनात्मक विकास अधूरा रह जाता है व साथ ही उसके व्यक्तित्व का परिष्कार उस गहराई में नहीं हो पाता; क्योंकि वहाँ व्यक्ति अपनी मनमरजी से जीवन जीने के लिए स्वतंत्र होता है। उसके पास सत्य से बचने और भागने के तमाम विकल्प होते हैं, लेकिन परिवाररूपी गृहस्थ तपोवन में ऐसा कोई विकल्प शेष नहीं बचता।

उसे उसी दायरे में स्वयं को समायोजित करते हुए जीवन के हर सत्य का सामना करना पड़ता है। यदि वह संयम, सहिष्णुता व समझ के साथ जीवन का सामना करता है, अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करता है तो वह आत्मपरिष्कार की एक ऐसी प्रक्रिया से गुजरता है, जिसे जीवन की बड़ी उपलब्धि माना जा सकता है। उसे प्राप्त करने के बाद फिर उसे बाहर कहीं समायोजित होने में अधिक कठिनाई नहीं होती।

परिवाररूपी प्रयोगशाला में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेष जैसे सूक्ष्म विकारों का समूल परिष्कार कर पाना संभव होता है और चित्त के विकार धुल जाने से जीवन कलुषरहित होने लगता है। आपसी सद्भाव विकसित होते-होते आत्मवत् सर्वभूतेषु का सूत्र परिवार की प्रयोगशाला में सधने लगता है। ऐसे में गृहस्थ जीवन के पड़ाव की वे

Scanned with CamScanner

फलश्रुतियाँ समझ में आती हैं, जिन्हें हमारे ऋषियों ने आश्रम व्यवस्था की आधारभूत कड़ी के रूप में स्थापित किया था।

महर्षि व्यास के शब्दों में—**गृहस्थ्येव हि धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते**। अर्थात गृहस्थाश्रम ही सभी धर्मों का आधार है। निस्संदेह परिवार-व्यवस्था में व्यक्ति और परिवार निर्माण की वह प्रक्रिया सहज रूप में संपन्न होती है, जो अपनी परिणति में समाज निर्माण के अगले चरण की नींव बनती है। सही ढंग से गृहस्थ जीवन को निभाने पर व्यक्ति अपने आंतरिक परिष्कार के साथ एक परिपक्व व्यक्तित्व के रूप में निखरकर सामने आता है और वह जीवन के अगले पड़ाव वानप्रस्थ के लिए तैयार हो जाता है। साथ ही वह अपने अनुभवों के साथ समाजसेवा के गुरुतर कार्य को निभाने की पात्रता विकसित करता है, जो आगे चलकर जीवन के अंतिम पड़ाव संन्यास की पूर्णतया ईश्वरान्मुखी अवस्था के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है।

यह सब परिवार-व्यवस्था की ही फलश्रुति है जिसे ऋषियों ने बहुत सोच-समझकर तैयार किया था। इसीलिए कहा गया है कि **धन्यो गृहस्थाश्रमः** अर्थात चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य है। जिस प्रकार समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं। निस्संदेह रूप में गृहस्थाश्रम नररत्नों को गढ़ने की प्रयोगशाला है और समाज को अच्छे नागरिक देने की खान है। भक्त, ज्ञानी, संत, महात्मा, महापुरुष, विद्वान, पंडित गृहस्थाश्रम से ही निकलकर आते रहे हैं। उनके जन्म से लेकर शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण, ज्ञानवर्द्धन—सभी कुछ गृहस्थाश्रम के बीच ही होता है।

परिवार के बीच ही मनुष्य की सर्वोपरि शिक्षा होती रही है। इसे संस्कारों की पूरी शृंखला के साथ आबद्ध करना ऋषियों का एक महान प्रयोग था जिसे युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने नए सिरे से सरल किंतु प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया तथा जिसे गायत्री परिवार में हर घर आज नैष्ठिक ढंग से संपन्न कर रहा है। इस तरह परिवार के महत्त्व को देखते हुए गृहस्थाश्रमरूपी पूर्वजों की विरासत को सहेजने की आवश्यकता है, जिसके महत्त्व को कोविड संक्रमण के दौर ने अधिक गहराई से अनुभव कराया है।

घर में एक साथ बैठना, एकदूसरे का सुख-दुःख बाँटना और मिल-जुलकर रहना कितना संतोषजनक और तृप्तिदायक अनुभव हो सकता है, इसको लोगों ने गहराई से समझा है। इसकी उपयोगिता व इसके महत्त्व को देखते हुए इसे संस्कारशाला के रूप में विकसित करना हमारा मुख्य दायित्व है, जिसमें नई पीढ़ियाँ उच्च जीवनमूल्यों के साथ विकसित हो सकें, श्रेष्ठ चरित्र के साथ निखरकर सामने आ सकें और बड़े बुजुर्ग गरिमापूर्वक रीति से इसमें रहते हुए अपने अनुभवों से सबको लाभान्वित कर सकें। ❑

नर्मदा अपने पूर्ण प्रवाह में कल-कल करती हुई आनंद और उल्लास के साथ बही जा रही थी। मार्ग में एक तालाब पड़ा, जिसका पानी चारों ओर से रुका हुआ था और वातावरण दुर्गंधित था। तालाब माँ नर्मदा से बोला—"आप क्यों इतना बह-बहकर अपना श्रम व्यर्थ कर रही हैं, मुझे देखें मैं कितने आराम से एक ही स्थान पर बैठा हुआ हूँ।"

नर्मदा बोलीं—"प्रगति और प्रवाह का पथ अपनाने से ही मेरा स्वरूप स्वच्छ, निर्मल और पवित्र है। इसीलिए मेरी प्रत्येक बूँद का कुछ उपयोग हो पाता है। तुमने अपने प्रवाह का मार्ग और प्रगति का द्वार, दोनों बंद कर दिए हैं, इसलिए तुम्हारा स्वयं का अस्तित्व भी खतरे में है और लोकहित का कोई कार्य तुम्हारे द्वारा हो पाना संभव भी प्रतीत नहीं होता।"

Scanned with CamScanner

शक्ति-उपासना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शक्ति के रूप में ईश्वर के नारी रूप की परिकल्पना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। दूसरी सभ्यताओं में भी देवियों के रूप मिलते हैं, परंतु अधिकांशत: पुरुष की सहयोगिनी या आंशिक सत्ता के रूप में; जबकि भारत में शक्ति-उपासना के रूप में नारी शक्ति की पराकाष्ठा को चित्रित किया गया है, जिसमें समस्त देवों के सम्मिलित अंश के रूप में शक्ति के सर्वसमर्थ एवं समग्र रूप की कल्पना की गई है।

इतिहास के आईने में देखें तो पाषाणकाल से ही भारत में शक्ति-उपासना के चिह्न मिलते हैं, जब चुनौतियाँ प्राकृतिक रूप से अधिक थीं। इनसे परित्राण के लिए किसी अदृश्य शक्ति का आश्रय लेना स्वाभाविक था, जिसमें मातृदेवी प्रमुख रूप से पूजित थीं। उत्तर पाषाणकाल में भी मातृदेवी की प्रतिमाओं की भरमार मिलती है। कांस्यकाल में मानवीय सभ्यता के उदय के साथ शक्ति-उपासना को लोकप्रियता मिली। भारतीय देवीवाद एवं सामीजनों की अस्तार्त, मिस्रवासियों की आइसिस और फ्रीगियनों की साइबिल की कल्पना में भी बहुत भारी समानता है।

एशिया माइनर तथा भूमध्यसागरीय प्रदेशों में मातृदेवी की पूजा प्राय: पुरुष देवता के साथ मिलती है। अफ्रीका में चाहे वह अपने पुत्र तनित के साथ हो, मिस्र में आइसिस के रूप में हो, फिनीशिया में अस्थारोथ के रूप में तामुज के साथ हो, एशिया माइनर में साइबिल के रूप में अतिस के साथ हो तथा क्रीट में रिया के रूप में जियस के साथ हो, वह सर्वत्र पुरुष देवता के साथ पूजी जाती थी।

सर जॉन मार्शल जैसे प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता उत्तर पश्चिमी एशिया जिसमें हड़प्पा, बलूचिस्तान, मेहरगढ़ और मोहनजोदड़ो शामिल हैं—को मातृशक्ति का जन्मस्थान मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में विश्व के किसी भी देश में शक्ति-उपासना इतने गहन और व्यापक रूप में प्रचलित नहीं रही है, जितनी कि भारत में, जहाँ हर कस्बे-पुरवे और देश के हर कोने में इसके अवशेष मिलते हैं।

सिंधु घाटी से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्रियों से ज्ञात होता है कि उस समय इसका स्वरूप अत्यंत विकसित था। तृतीय सहस्राब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध को इसके चरमोत्कर्ष का काल माना जा सकता है। रेडियो कार्बन डेटिंग से भी इसका काल लगभग 2400 ई.पू. से 1650 ई.पू. निर्धारित हुआ है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, चन्हूदड़ो तथा अन्य स्थलों से भी मिट्टी की बनी हुई कुछ स्त्रियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिन्हें पुरातत्त्ववेत्ता मातृदेवी की मूर्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार की मूर्तियाँ पश्चिमी एशिया, इजियन सागर के आस-पास एलम, एशिया माइनर, मैसोपोटामिया, सीरिया, क्रीट, मिस्र आदि में भी प्राप्त हुई हैं। सैंधवकालीन मातृदेवी मानव की पालिका, पोषिका एवं जननी मानी जाती थी।

सिंधु सभ्यता में लिंग एवं चक्र प्रतीक भी मिलते हैं, जो सृष्टिकारिणी मानव की जननी मातृदेवी की साकार उपासना को इंगित करते हैं। कालांतर में यही पार्वती, काली तथा दुर्गा आदि रूपों में पूजी जाने लगी। धीरे-धीरे मातृदेवी ने शक्ति-पूजा का रूप ले लिया और आज वह दुर्गा, काली, महिषासुरमर्दिनी तथा भवानी के रूप में पूजित है।

वैदिककाल में शक्ति-उपासना का उद्भव ऋग्वेद अर्थात पूर्व वैदिककाल में खोजा जा सकता है। देवियों के रूप में इनकी चर्चा अधिक होती है। उषा, अदिति, दिति, सरस्वती, वाक्, आप:, पृथ्वी, राका, श्रद्धा, इंद्राणी, वरुणानी, रुद्राणी, आग्नेयी, शची, मही, भारती, उर्वशी आदि। इस तरह शक्ति तत्त्व की स्वतंत्र उपासना का इस युग में अभाव दिखता है, किंतु ऋक्संहिता में शक्ति तत्त्व के बीज खोजे जा सकते हैं, जिनका देवीसूक्त में स्पष्ट वर्णन मिलता है। रात्रिसूक्त भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

वेदों के चरम विकास का काल उपनिषदों में आता है, जिसकी मुख्य वस्तु थी ब्रह्मविद्या—इस विधा में देवी के स्वरूप में नए दार्शनिक आयाम जुड़े हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म का शक्ति के रूप में वर्णन होता है, जिनसे सृष्टि की

Scanned with CamScanner

रचना मानी गई है। केनोपनिषद् में प्रज्ञा, ब्रह्मवादिनी, ब्रह्मशोभना, उमा, हेमवती के रूप में शक्तियों की उपासना का वर्णन मिलता है। मुंडकोपनिषद् में काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, स्फुलिंगिनी, धूम्रवर्णा तथा विश्वरूपा के रूप में देवी का वर्णन मिलता है।

इसके बाद सूत्रसाहित्य में उषा का वर्णन नहीं मिलता, लेकिन सरस्वती उल्लेखित होती हैं। काठक गृह्यसूत्र तथा मानव गृह्यसूत्र में ह्रीं, श्रीं, लक्ष्मी, पुष्टि, काली, षष्ठी, भद्रकाली, भावनी तथा महीषिरा आदि देवियों का वर्णन मिलता है। बौधायन गृह्यसूत्र एवं मनुसंहिता में दुर्गा और ज्येष्ठा का उल्लेख मिलता है। इसके साथ श्रद्धा, मेधा, भूति आदि नाम भी मिलते हैं।

इसके उपरांत रामायण में स्वतंत्र उपास्य के रूप में देवी का वर्णन नहीं मिलता, पर हाँ, रुद्र-शिव पत्नी के रूप में उमा, गिरिजा, भवानी और पार्वती नाम से अनेक स्थानों पर चर्चा अवश्य मिलती है। महाभारत में देवी को शिव की सहचरी एवं शिव की शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। भीष्म पर्व के प्रारंभ में दुर्गा-पूजा का उल्लेख है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण के कहने पर योद्धा अर्जुन द्वारा युद्ध में विजय के लिए माँ दुर्गा की आराधना होती है। यहाँ माँ दुर्गा को सिद्धों की सेनानायिका, कालशक्ति, कपालधारिणी, कुमारी, काली, कपिला, कृष्णपिंगला, भद्रकाली, महाकाली, चंडी, समीरणी, कात्यायनी, कराली, विजया, जया आदि नामों से पुकारा गया है एवं उनकी पूजा की गई है।

इस तरह इस काल में देवी के स्वतंत्र शक्तिसंपन्न स्वरूप का उभार हो चुका था। विराट पर्व में युधिष्ठिर द्वारा की गई स्तुति में देवी को महिषासुरमर्दिनी, यशोदा के गर्भ से जन्म लेने वाली विंध्याचलवासिनी तथा नारायण की परमप्रिया बताया गया है। इसके अतिरिक्त कालरात्रि के रूप में भी देवी की उपासना करने का वर्णन आता है। इस तरह महाभारत में शक्ति-उपासना का उद्भव हो चुका था और उसे भक्तसंरक्षिका एवं असुरसंहारिणी बताया गया है।

पुराणकाल में शक्ति-उपासना का स्वरूप महाकाव्य काल जैसा ही प्रचलित रहता है, बस, उसका फलक अधिक व्यापक हो जाता है। अधिकांश पुराणों में न्यूनाधिक रूप में देवी का वर्णन मिलता है, लेकिन शक्ति-उपासना की दृष्टि से श्रीमद्देवीभागवत, कालिका पुराण तथा मार्कंडेय पुराण में देवी माहात्म्य और ब्रह्मांड पुराण के ललितासहस्र प्रकरणों का विशेष महत्त्व है। इस तरह पौराणिक युग में शक्ति-उपासना अपने चरम रूप में प्रकट होती है।

एक ओर जहाँ सौम्य रूप में देवी की उपासना उमा, गौरी, पार्वती, अन्नपूर्णा आदि रूप में होती है तो वहीं दूसरी ओर उग्र रूप में चंडिका, काली और दुर्गा के रूप में उसकी उपासना होती है। सिंह पर आरूढ़ दुर्गा शक्ति अपनी भुजाओं में अस्त्र-शस्त्र धारण किए हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवता उनकी आराधना करते हैं। वे शिव की ही नहीं अपितु सभी देवताओं की भी शक्ति हैं। उनका प्रमुख कार्य असुरों का संहार करना है। दुर्गा के हाथों महिषासुर के वध की कथा अनेक पुराणों में दी गई है। इसके अतिरिक्त वे शुंभ-निशुंभ, मधु-कैटभ और रक्तबीज का भी वध करती हैं।

शक्ति-उपासना के संदर्भ में मार्कंडेय पुराण का देवी माहात्म्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी रचना गुप्तकालीन मानी जाती है। इस ग्रंथ का शाक्त मत में कुछ वैसा ही स्थान है, जैसा कि वैष्णव मत में श्रीमद्भगवत् गीता का। गीता के समान इसमें भी सात सौ श्लोक हैं, जिस आधार पर इसे दुर्गासप्तशती कहा जाता है। इसमें भी अर्जुन की तरह मोहग्रस्त राजा सुरथ और समाधि वैश्य को उबारने के लिए ऋषि मेधा—शक्ति तत्त्व का वर्णन करते हैं। इसमें देवी के लीला प्रसंगों के द्वारा अवतारवाद का स्मरण दिलाते हैं कि विभिन्न युगों में देवताओं के शत्रु दानवों तथा असुरों का वध करने के लिए वह विभिन्न रूपों में अवतरित होंगी।

इस तरह भगवती धर्म की स्थापना, देवत्व की रक्षा व असुरों का संहार करने के लिए युगशक्ति के रूप में प्रकट होती हैं। हालाँकि भक्तों के भावलोक में तो भवानी नित्य विद्यमान रहती हैं, किंतु धरा पर उनका लीला अवतरण समय-समय पर होता रहता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने युगशक्ति गायत्री के रूप में उस शक्ति का प्रादुर्भाव माना और इसके आधार पर युग निर्माण आंदोलन का वृहद् स्वरूप खड़ा किया। अब हम सब शिष्यवृंद का कर्त्तव्य बनता है कि सद्बुद्धि एवं आत्मबल की अधिष्ठात्री आदिशक्ति का माध्यम बनकर अपने स्तर पर गुरुसत्ता के कार्य के अकिंचन ही सही, किंतु प्रमाणिक अंग बनकर युग निर्माण के महायज्ञ में अपनी भावभरी नैष्ठिक आहुति अर्पित करते रहें। ❑

Scanned with CamScanner

सुपात्र ही पाते हैं ईश्वरीय वरदान

वसुमती चंपा नगरी की राजकुमारी थी। अचानक हुए एक युद्ध में वसुमती के पिता जो चंपा के राजा थे, उनकी मृत्यु हो गई और राजकुमारी को बंधक बना लिया गया। बाद में राजकुमारी वसुमती को कौशांबी नगर के धन्ना सेठ नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी ने खरीद लिया। उस सेठ ने वसुमती का नाम बदलकर चंदनबाला रख दिया। सेठ राजकुमारी को अपनी पुत्री की तरह मानता था, परंतु सेठ की पत्नी मूला के मन में यह डर था कि कहीं सेठ राजकुमारी के प्रेम में न पड़ जाए।

एक बार जब सेठ व्यापार के सिलसिले में किसी दूसरे नगर को गया हुआ था तभी मूला ने राजकुमारी का सिर मुँड़वाकर उसे बेड़ियों से बँधवा दिया। तीन दिनों तक राजकुमारी को भूखा-प्यासा रखा गया और अंत में उसे सिर्फ भुने हुए चने खाने को दिए गए। इधर महावीर कठोर तपस्या में लगे हुए थे और अपने पाँच महीने के उपवास को तोड़ने के लिए घर-घर जाकर भिक्षा माँग रहे थे।

अब तक भगवान महावीर की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई थी और हर कोई उनके जैसे परम तेजस्वी पुरुष को अपने हाथों से स्वादिष्ट भोजन कराने को आतुर था, किंतु महावीर भोजन के लिए आग्रह करने वाले व्यक्ति की मन:स्थिति व अंत:करण को समझकर भोजन स्वीकार करने को तैयार नहीं हो पाते और आगे बढ़ जाते और इस प्रकार कहीं भी भोजन ग्रहण नहीं कर पाते। लोगों के लिए महावीर का यह व्यवहार समझ से परे था। वे यह नहीं जानते थे कि कुछ खास परिस्थितियाँ पूर्ण होने एवं भोजन के लिए आग्रह करने वाले की मन:स्थिति देखकर ही वे भोजन स्वीकार करते और उपवास तोड़ते हैं, फिर चाहे ऐसा होने में महीनों ही क्यों न लग जाएँ; क्योंकि महावीर मानते थे कि यदि प्रकृति उन्हें जीवित रखना चाहती है तो वह उनका प्रण जरूर पूरा करेगी।

अपनी तपस्या के ग्यारहवें साल में महावीर कौशांबी में थे और उन्होंने प्रण किया था कि वे तभी अन्न ग्रहण करेंगे, जब वह किसी राजकुमारी के द्वारा दिया जाए व साथ ही जिसके बाल मुँड़े हुए हों; जो बँधनों में जकड़ी हुई हो व जिसकी आँखों में आँसू हों और वह खाने के लिए भुने हुए चने दे। ऐसी शर्त पूरी होना कठिन नहीं तो बहुत आसान भी न था। शायद प्रकृति भी राजकुमारी वसुमती को भगवान महावीर जैसे परम तेजस्वी पुरुष को अन्न देने का सौभाग्य प्रदान करना चाहती थी। राजकुमारी मन से परम पावन थी। उसके हृदय में साधु पुरुषों के लिए सच्ची श्रद्धा थी। उधर महावीर उसी कौशांबी में पाँच महीने पच्चीस दिनों तक एक घर से दूसरे घर भटकते रहे।

चंदनबाला को भी यह बात पता थी कि महावीर अपना उपवास तोड़ने के लिए घर-घर भिक्षा माँग रहे हैं और जैसे ही तीन दिनों की यातना के बाद उसे खाने के लिए भुने चने दिए गए तो स्वयं भूख से व्याकुल होते हुए भी वह उन भुने चनों को महावीर को देने को आकुल हो गई।

उस दिन महावीर उस सेठ के द्वार पर आ पहुँचे, जहाँ चंदनबाला महावीर को अपने हाथों से भुने चने देने के सपने सँजोये बैठी थी। उसके मन में यही विचार आ रहे थे कि काश वो उन भुने चनों को तपस्वी महावीर को दान में दे पाती और वे उन्हें स्वीकार कर लेते। वो ऐसा सोच ही रही थी कि उसे खबर मिली कि महावीर सेठ के द्वार पर भिक्षा पाने को खड़े हैं। यह खबर सुनते ही चंदनबाला के आनंद की सीमा न रही। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा, क्योंकि उसे लग रहा था कि भगवान ने सचमुच उसकी प्रार्थना सुन ली है। वह अपना दु:ख-दरद भुला बैठी और दौड़ते हुए द्वार पर आ पहुँची।

महावीर ने उसे देखते ही उसके हृदय में बह रही प्रेम और श्रद्धा की उद्दाम तरंगों को पहचान लिया। महावीर ने देखा इस बार अन्नग्रहण को लेकर उनकी सभी शर्तें पूरी हो रही हैं सिवाय इसके कि चंदनबाला की आँखों में आँसू नहीं थे। महावीर के आने के पूर्व तक तो चंदनबाला की आँखों में

Scanned with CamScanner

आँसू थे, परंतु उनके आने की खुशी में वह पुलकित एवं आनंदित थी।

चंदनबाला की आँखों में आँसू न देख महावीर इस बार भी अन्नग्रहण किए बिना वापस जाने लगे। यह देख चंदनबाला को बहुत दुःख हुआ और वह रोने लगी। तभी अचानक महावीर ने पीछे मुड़कर चंदनबाला को देखा। उसकी आँखों से झरते आँसुओं में सच्ची श्रद्धा देख महावीर निकट गए और उससे भुने हुए चने लेकर खाने लगे। उन्होंने उसके दिए चने खाकर अपना प्रसिद्ध उपवास तोड़ा। अपने हाथों से चने लेकर महावीर को खाते देख चंदनबाला के आनंद की सीमा न रही। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह सचमुच अपने को धन्य महसूस कर रही थी। कहते हैं कि कालांतर में जब भगवान महावीर को ज्ञान प्राप्त हुआ, तब चंदनबाला 36000 जैन साध्वियों की पहली प्रमुख बनी। सचमुच यदि हृदय में सच्ची श्रद्धा, सच्चा समर्पण एवं सच्ची पात्रता हो तो प्रकृति हमें स्वतः ही सब कुछ प्रदान कर देती है। सचमुच सुपात्र ही पाते हैं ईश्वरीय अनुदान। ❑

राजा बहराम तीर चलाने में अत्यंत निपुण थे। एक बार अपनी रानी के साथ शिकार खेलने वन गए। वहाँ एक हिरन सो रहा था। बहराम ने एक तीर ऐसा मारा कि हिरन के कान को छूकर निकल गया। हिरन ने सोचा कि कान पर मक्खी बैठ गई है, उसने अपना पैर कान की तरफ उठाया। बहराम ने दूसरा तीर ऐसा मारा कि पैर और कान परस्पर जुड़ गए। बहराम ने प्रशंसाप्राप्ति की इच्छा से रानी की तरफ देखा, परंतु रानी ने केवल इतना ही कहा—"अभ्यास से सब कुछ हो सकता है।" बहराम को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—"तुम भी ऐसा अभ्यास करके दिखाओ।"

रानी भी स्वाभिमानी थी। वह विशेष कार्य का बहाना करके एक गाँव में जाकर रहने लगी। वहाँ एक गाय का बछड़ा खरीदकर उसे उठाकर रोज छत पर चढ़ने का अभ्यास करने लगी। जैसे-जैसे बछड़ा भारी होता जाता था, वैसे-वैसे रानी का बोझा उठाने का अभ्यास भी बढ़ता जाता था। तीन वर्ष उपरांत बहराम शिकार खेलकर उसी गाँव में ठहरा, जिसमें रानी रहती थी। रानी का बछड़ा अब पूर्ण विकसित हो गया था, वह उसे उठाकर छत पर चढ़ रही थी। बहराम ने दूर से इसे देखा तो उसे अत्यंत आश्चर्य हुआ। वह उत्सुकतावश वहाँ पहुँचा और बोला—"इतने बड़े प्राणी को स्त्री तो क्या, पुरुष के लिए भी उठाना संभव नहीं है; फिर आप इसे उठाकर छत पर किस प्रकार चढ़ती हैं?" रानी ने अपने चेहरे से बुरका हटाते हुए कहा—"राजन्! अभ्यास से सब कुछ संभव है।" राजा ने रानी को पहचान लिया और अपनी हार स्वीकार कर ली। वस्तुतः अभ्यास से सब कुछ संभव है।

Scanned with CamScanner

क्या हम जानते हैं स्वयं को?

हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? मनुष्य होने के नाते हम सभी को स्वयं से यह प्रश्न करना चाहिए और इस प्रश्न का उत्तर तलाशना चाहिए; क्योंकि जिसने इस प्रश्न का उत्तर तलाश लिया, उसका जीवन सार्थक हो जाता है।

इस संसार में अनगिनत ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने संसार में महत्त्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित कीं, फिर भी उन्हें अपने जीवन से संतोष नहीं हुआ। उन्हें अपने जीवन में सार्थकता महसूस नहीं हुई। उन्हें कुछ ऐसा बोध नहीं हुआ, जिसके कारण उन्हें अपना जीवन संतोषजनक एवं सफल महसूस होता हो। प्रश्न उठता है कि सब कुछ अर्जित करने के बाद भी जीवन में ऐसा क्या है, जो रिक्तता का एहसास देता है।

यह प्रश्न गहरा है, लेकिन जवाब बड़ा सरल-सा है—स्वयं के प्रति अनभिज्ञता। जिसने स्वयं को जान लिया, उसने मानो सब कुछ जान लिया, सच्चे ज्ञान को अनुभव कर लिया। कह सकते हैं कि जिसने स्वयं को ही नहीं जाना, उसने सारी दुनिया को जानकर भी कुछ नहीं जाना। सही माने में उसने ज्ञान का स्पर्श भी नहीं किया।

एक बार ग्रीस देश के महान दार्शनिक सुकरात से मिलने के लिए उनका एक अनुयायी उनके घर पर आया। उसने दरवाजे पर दस्तक दी। जब सुकरात अपने घर से बाहर निकले तो अनुयायी ने बड़ी विनम्रतापूर्वक उनसे आग्रह किया कि—मैं महान दार्शनिक सुकरात के विचार एवं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत दूर से उनसे मिलने आया हूँ। क्या मुझे उनके दर्शन हो सकते हैं?

सुकरात थोड़ी देर के लिए शांत रहे और फिर बोले—"आप किस सुकरात की बात कर रहे हैं? आज तक तो मैं खुद ही सुकरात को नहीं पहचान पाया हूँ। माफ कीजिए। मैं आपको उनके दर्शन नहीं करा सकता।" सुकरात के दर्शन का इच्छुक वह अनुयायी बड़ी निराशा के साथ वापस लौट गया।

देखा जाए तो सुकरात का अपने अनुयायी के साथ किया गया यह व्यवहार बड़ा अजीब लगता है, लेकिन गहरी दृष्टि से सुकरात का जवाब सही है और इसके अर्थ भी गहरे हैं, जो हमें तब पता चल सकेंगे, जब हम स्वयं से यह प्रश्न करेंगे कि क्या हम खुद को पूरी तरह से पहचान पाते हैं? इसका उत्तर मिलेगा कि पूरी तरह से नहीं, किंतु थोड़ा-थोड़ा अवश्य पहचानते हैं। वह पहचान भी कितनी सही है यह हम नहीं कह सकते; क्योंकि व्यक्ति जितना अपने को जानता है, वह आधा-अधूरा ही होता है। समय के साथ जैसे-जैसे व्यक्तित्व के आवरण हटते हैं और चुनौतियों की रगड़ से जैसे-जैसे व्यक्तित्व प्रकाशित होकर उभरता है, तब व्यक्ति स्वयं से परिचित हो पाता है।

प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने एक बार कहा था कि मनुष्य के जीवन में केवल दो ही दिन महत्त्वपूर्ण होते हैं। पहला दिन वह, जब मनुष्य का जन्म होता है और दूसरा दिन वह, जब वह यह जान लेता है कि आखिर उसके जन्म लेने के पीछे का मूल उद्देश्य क्या है? दुर्भाग्यवश जीवन धारण करने के बाद भी हम अपने जन्म के पवित्र उद्देश्य को पूरी तरह से भूल जाते हैं और इस अनमोल मानव जीवन को यों ही व्यर्थ गँवा देते हैं।

विश्वविजय करने वाले सिकंदर के गुरु अरस्तू ने एक बार उससे यह प्रश्न पूछा कि तुम विश्वविजेता बन गए हो। अब आगे तुम्हारी क्या योजना है? क्योंकि तुमने दिखने वाली दुनिया पर तो विजय प्राप्त कर ली है, लेकिन तुम्हारे अंदर बसी हुई दुनिया को तुम कैसे जीतोगे? उस दुनिया को जीतने के लिए तुम्हारे लिए सही माने में मनुष्य बनना जरूरी है। इस दुनिया को जीतने के लिए मनुष्य की गरिमा को भी तुम खो चुके हो। सिकंदर अपने गुरु के इस प्रश्न को सुनकर निरुत्तर-सा रह गया; क्योंकि जो उन्होंने कहा, वो सत्य था।

हम भी भौतिक सुख-सुविधाओं और बेशुमार धन-संपत्ति को बटोरने की अंधी चाहत में मानवता के दुःख और उसके आँसू पोंछना भूलकर संवेदनहीन हो जाते हैं। दूसरों को कष्ट व पीड़ा में देखकर द्रवित नहीं होते और उनकी

Scanned with CamScanner

मदद नहीं करते हैं अपितु छल-प्रपंच आदि का सहारा लेकर दूसरों को ठगने का प्रयत्न करते हैं।

लोभ, तृष्णा, अहिंसा, असत्य वचन सरीखे अमानवीय कृत्यों में जीवन के जो अनमोल क्षण व्यर्थ होते हैं, वे जीवन को सच्चे उद्देश्य से भटकाते हैं। दुःखी और असहाय मानव के दुःख और दरद के आँसू पोंछकर उनके चेहरे पर खुशियों को लाने की कोशिश ही सच्ची मानवता है। ऐसा करने के उपरांत ही व्यक्ति स्वयं से परिचय को पाने के योग्य बनता है और अपने जीवन के उद्देश्य को खोजने की दिशा में सही दृष्टि में आगे बढ़ता है।

व्यक्ति जितने सत्कर्म करता है, वह उतना ही स्वयं को जानने की ओर आगे बढ़ता है और जितने वह दुष्कर्म करता है, उतना ही वह स्वयं से और अपने जीवनोद्देश्य से दूर होता चला जाता है। महापुरुषों का संग व्यक्ति को स्वयं को जानने की दिशा में ले जाता है, इसलिए सत्संग की इतनी महिमा गायी गई है। वहीं कुसंग के कारण व्यक्ति भटक जाता है तथा स्वयं को जानने व समझने की राह से बहुत दूर चला जाता है। यही कारण है कि कुसंग सदैव अहितकारी होता है और यह जीवन को विनाश की ओर ले जाता है।

अब एक बार फिर से इस प्रश्न को याद करते हैं कि आखिर हम कौन हैं ? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर हमारे भीतर ही है, जिसे जानने के लिए हमें भटकने अथवा बहकने की जरूरत नहीं। जिन्होंने भी इन प्रश्नों का उत्तर जाना, उन्होंने आत्मस्थ होकर ही जाना। अगर हमें भी इन प्रश्नों का उत्तर तलाशना है तो उन्हीं लोगों की शरण में जाना होगा, जिन्होंने इस प्रश्न का उत्तर तलाश लिया है। उनसे ही जीवन जीने की वह कला सीखनी होगी, जिसके द्वारा वे इन प्रश्नों का उत्तर खोज पाए, क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर वह अमूल्य निधि है, जो जीवन में अर्जित की गई सभी निधियों से बढ़कर है। स्वयं को जानना ही सब कुछ जान लेना है। ❑

एक संत तीर्थयात्रा करते हुए वृंदावन धाम की ओर रवाना हुए। वृंदावन से कुछ मील पहले ही रात हो गई। उन्होंने सोचा कि रात पास के गाँव में बिताई जाए, सवेरे उठकर वृंदावन चल देंगे। उनका कड़ा नियम था कि वे जल भी उसी घर का ग्रहण करते थे—जिसका खान-पान, आचार-विचार पवित्र हों। किसी ने उन्हें बताया कि उस सीमा के इस गाँव में सभी कृष्णभक्त वैष्णव रहते हैं। उन्होंने गाँव के एक घर के आगे खड़े होकर एक व्यक्ति से कहा—"भाई मुझे रात बितानी है, परंतु मेरा नियम है कि मैं शुद्ध आचार-विचार वाले व्यक्ति के घर ही भिक्षा तथा जल ग्रहण करता हूँ। क्या मैं रातभर आपके घर में ठहर सकता हूँ ?"

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! मैं तो नराधम हूँ। मेरे सिवा अन्य सभी लोग परम वैष्णव हैं, फिर भी यदि आप मेरे घर को अपने चरणों से पवित्र करेंगे तो मैं स्वयं को भाग्यशाली मानूँगा।" संत आगे बढ़ गए। दूसरे व्यक्ति ने भी यही कहा और आगे बढ़ने पर अन्य व्यक्तियों ने भी स्वयं को निकृष्ट अन्यों को श्रेष्ठ बताया। संत समझ गए कि इस गाँव के सभी लोग अतिविनम्र व परम वैष्णव हैं। संत एक सद्गृहस्थ से बोले—"भाई! नीच तुम नहीं, मैं ही हूँ तथा तुम्हारे घर का अन्न-जल ग्रहण कर मैं पवित्र हो जाऊँगा।"

Scanned with CamScanner

उत्कर्ष का आधार—प्रबल इच्छाशक्ति

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने का एक प्रमुख आधार इच्छाशक्ति है—चाहे खेल का मैदान हो या परीक्षा की तैयारी, खेती-बारी का लंबा इंतजार हो या पर्वत शिखर की कठिन चढ़ाई या जीवन का कोई विषम दौर। जीवन के हर मोड़ पर प्रबल इच्छाशक्ति अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनवरत असफलता मिलने के बाद भी फिर से प्रयास करने का जज्बा इच्छाशक्ति से ही निर्धारित होता है। वास्तव में जीवन में सफलता इच्छाशक्ति के अनुपात में ही मिलती है। आध्यात्मिक जीवन में तो इसका महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। आत्मसुधार या व्यक्तित्व का निर्माण इच्छाशक्ति पर ही निर्भर करता है।

बिना इच्छाशक्ति के सारी योग्यता, अनुकूलता एवं प्रतिभा धरे-के-धरे रह जाते हैं। जीवन की विफलता और त्रासदी के मूल में दुर्बल इच्छाशक्ति ही कारण होती है। जब हमें यह मालूम हो कि जीवन में सही क्या है और गलत क्या और तब भी हम गलत मार्ग पर जाने के लिए स्वयं को विवश अनुभव करते हैं तो यह इच्छाशक्ति की न्यूनता को इंगित करता है। जीवन की हर नैतिक दुर्बलता एवं पतन-पराभव में दुर्बल इच्छाशक्ति ही मुख्य कारण होती है। जीवन में उत्कर्ष के लिए क्या सही मार्ग है यह जानते हुए उस पर आरूढ़ न हो पाना, इच्छाशक्ति के अभाव के कारण होता है।

वास्तव में इच्छाशक्ति हर व्यक्ति में अंतर्निहित होती है, जिसे जगाने एवं विकसित करने की आवश्यकता भर है। आवश्यकता पड़ने पर या किसी दबाव में हमें वही कार्य सरलतापूर्वक अंजाम दे जाते हैं, जो सामान्यतया हम टाल रहे होते हैं। यह हमारे भीतर निहित इच्छाशक्ति को दरसाता है। वास्तव में इच्छाशक्ति का विकास और कुछ नहीं, बल्कि अंतर्निहित शक्ति का जागरण तथा सही दिशा में उसके नियोजन करने की प्रक्रिया भर है।

इच्छाशक्ति हमारे स्व और मन की संयुक्त रचनात्मक और क्रियात्मक शक्ति है, जो हमें निर्धारित कार्य को निष्कर्ष तक पहुँचाने में सहायक बनती है। जो सही है यह हमें उस पर चलने तथा जो गलत है, उससे बचने की शक्ति देती है। कुछ बातों का ध्यान रखते हुए हम अपनी इच्छाशक्ति को और भी ज्यादा प्रबल बना सकते हैं।

यह स्पष्ट समझ व धारणा कि इच्छाशक्ति को हम बढ़ा सकते हैं तथा धीरे-धीरे अनवरत प्रयास के साथ हम इसको सशक्त कर सकते हैं—बहुत माने रखती है। समस्या यह होती है कि हम अपनी इच्छाशक्ति को बढ़ाने का सचेष्ट प्रयास नहीं करते। इस पर विचार ही नहीं करते कि इसे बढ़ाया भी जा सकता है और इस एहसास से परेशान रहते हैं कि हम दुर्बल हैं और अपनी इच्छाशक्ति को नहीं बढ़ा सकते।

इसका एक महत्त्वपूर्ण कारक है—भाव व बुद्धि के बीच का विभेद, जिसके कारण हम लक्ष्य की प्राप्ति को बौद्धिक रूप से तो समझते हैं, लेकिन उसे हृदय से अनुभव नहीं कर पा रहे होते और ऐसे में बीच की बाधाएँ हमारे मनोबल को तोड़ देती हैं; जबकि हृदय से लक्ष्य को प्राप्त करने की चाहत हमें वह आवश्यक शक्ति प्रदान करती है जो तमाम विघ्न-बाधाओं के बीच हमें लक्ष्यसिद्धि तक पहुँचाकर रहती है। बौद्धिक समझ के साथ अपने आदर्श, लक्ष्य या इष्ट के प्रति अनुराग का होना वह महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जो इच्छाशक्ति को बलवान बनाता है।

अपने किए पर पश्चात्ताप और भविष्य के प्रति चिंताएँ—इच्छाशक्ति को कमजोर करने वाले दो बड़े तत्त्व हैं। भूतकाल में हुई गलतियों को लेकर कुढ़ते रहने से ऊर्जा कुंठित होती है तथा भविष्य के प्रति चिंता व्यक्ति को अकर्मण्य बना देती है; जबकि भूत और भविष्य में अधिक उलझने के बजाय वर्तमान में जीना जीवन को एक नया अर्थ देता है। वर्तमान में जीने के लिए जीवन के मूल्यों की स्पष्ट समझ महत्त्वपूर्ण होती है। मूल्यों की समझ के अभाव में लोग हर पल बदलती इच्छाओं के हाथ का खिलौना बन जाते हैं और अपने मनोबल तथा इच्छाशक्ति को दुर्बल करते हैं।

ऐसे में सही व गलत पर अनवरत विचार करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इस विवेक के अभाव में व्यक्ति कब सांसारिक इच्छाओं, कामनाओं और वासनाओं का दास बन

Scanned with CamScanner

जाता है—इसका पता ही नहीं चलता। यह मार्ग अंततः व्यक्ति को दुःख एवं विक्षोभ की ओर ही ले जाता है; जबकि मन की शांति और जीवन का आनंद तो सद्गुणों के विकास पर निर्भर करता है न कि धन या सांसारिक सुख-भोग के अंबार पर। विवेक का अनुसरण इच्छाशक्ति को सशक्त करता है।

इच्छाशक्ति को बढ़ाने के लिए स्वयं को जितना अधिक हो सके व्यस्त रखें। खाली मन शैतान का घर होता है, जो व्यक्ति को तमाम तरह की मूर्खतापूर्ण गतिविधियों में संलिप्त करता है और बाद में पश्चात्ताप का कारण बनता है। काम के साथ स्वस्थ आदतों को अपनाएँ, जिससे खाली समय में मन को रचनात्मक दिशा में लगाए रख सकें। इससे कुछ नए सृजन का संतोष मिलेगा और साथ ही इच्छाशक्ति भी बढ़ेगी। इसके साथ ही अनावश्यक गपशप, फालतू के सोच-विचार, कुकल्पनाओं, व्यर्थ के कार्यों एवं व्यसनों से दूर ही रहें। इनसे अपनी ऊर्जा को बचाकर किन्हीं सकारात्मक, सार्थक कार्यों एवं स्वाध्याय-सत्संग आदि में लगाएँ। अपनी तन-मन की ऊर्जा का सुनियोजन अंततः इच्छाशक्ति को बढ़ाने वाला अभ्यास सिद्ध होता है।

इस कार्य में असफलता को खेल का हिस्सा मानें। हतोत्साहित न हों व असफलता से आवश्यक सीख लेते हुए दुगने उत्साह के साथ अपने कार्य में लग जाएँ। हर सफलता के साथ इच्छाशक्ति में वृद्धि होगी तथा जीवन सफलता के नए सोपानों की ओर बढ़ चलेगा।

निस्संदेह ऐसा करने के लिए एक अनुशासित जीवन जीने की आवश्यकता होती है। किसी के दबाव में नहीं, बल्कि अपनी समझ के आधार पर जीवन को जिएँ। परीक्षा की तैयारी में जो बच्चे मनमानी करते हैं, अस्त-व्यस्त जीवन जीते हैं, समय-संयम का पालन नहीं करते हैं—वे अंततः तनाव एवं अवसादग्रस्त होते हैं और उनके हिस्से में असफलता आती है। जबकि जो विद्यार्थी अपने शौक पर संयम रखते हैं, स्मार्टफोन के प्रलोभन से दूर रहते हैं और समय के हर पल का सदुपयोग करते हुए अनुशासित होकर परीक्षा की तैयारी करते हैं, वे आत्मविश्वास के साथ परीक्षा का सामना कर पाते हैं तथा अंततः अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण होते हैं।

ऐसे ही जीवन की परीक्षा अनुशासन की माँग करती है। अपने लक्ष्य के अनुरूप कसी हुई दिनचर्या, अपने तन-मन, विचार-भाव एवं व्यवहार का अनुशासन—व्यक्ति को सांसारिक एवं आंतरिक दोनों रूपों में सशक्त बनाता है और इच्छाशक्ति का विकास व्यक्ति को सर्वांगीण उत्कर्ष के शिखर की ओर ले जाता है। ❑

शांतिकुंज के तीर्थ सेवन सत्र में सम्मिलित होने वालों को तथ्यानुयायी होना चाहिए। उन्हें गंगा में पवित्रता और हिमालय से प्रखरता की प्रेरणा लेकर उस महानता का आश्रय लेना चाहिए, जिसे अध्यात्म की भाषा में श्रेय या शिव कहते हैं। महानता की ओर कदम बढ़ाने की उमंग का उठना ही तीर्थ का पुण्यफल है। जिन्हें ऐसा कुछ हाथ लगे, समझना चाहिए उन्हीं का तीर्थ सेवन सफल एवं सार्थक हुआ। महानता ही है, जिसकी परिणति स्वर्ग और मुक्ति के रूप में होती है। उसी को अपनाने वाले सिद्धपुरुष महामानव कहलाते हैं। तृप्ति, तुष्टि और शांति के त्रिविध उपहार इसी मार्ग पर चलने वालों को मिलते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

Scanned with CamScanner

नववर्ष की मंगलकामना

नववर्ष सभी प्राणियों को अपने धर्मकर्त्तव्य का पालन करते हुए सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। सृष्टि में किसी को कष्ट न हो। सभी स्वस्थ, सुखी, समृद्ध एवं आपसी सौहार्द से ओत-प्रोत रहें।

❋ अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा

❋ युग निर्माण योजना मथुरा

❋ शांतिकुंज हरिद्वार

Scanned with CamScanner

प्रमुख पर्व-त्योहार- 2021

12	जनवरी	राष्ट्रीय युवा दिवस स्वामी विवेकानंद जयंती
14	जनवरी	मकर संक्रांति
20	जनवरी	गुरु गोविंदसिंह जयंती
23	जनवरी	नेताजी सुभाष चंद्र बोस जयंती
26	जनवरी	गणतंत्र दिवस
30	जनवरी	शहीद दिवस
16	फरवरी	वसंत पंचमी/बोध दिवस
27	फरवरी	संत रविदास जयंती/माघी पूर्णिमा
11	मार्च	महाशिवरात्रि
15	मार्च	रामकृष्ण परमहंस जयंती
28	मार्च	होलिका दहन
29	मार्च	होली, धूलिवंदन
13	अप्रैल	संवत्सरारंभ/नवरात्रारंभ/वैशाखी
14	अप्रैल	अंबेडकर जयंती/रमजान*
21	अप्रैल	श्रीराम नवमी/समर्थ गुरु रामदास जयंती
25	अप्रैल	महावीर स्वामी जयंती
27	अप्रैल	हनुमज्जयंती/चैत्र पूर्णिमा
14	मई	परशुराम जयंती/अक्षय तृतीया/ईदुलफित्र*
26	मई	बुद्ध पूर्णिमा/वैशाख पूर्णिमा
10	जून	वट सावित्री
20	जून	गायत्री जयंती/गंगा दशहरा/महाप्रयाण दिवस पूज्य गुरुदेव
21	जून	निर्जला एकादशी (भीमसेनी एकादशी)
24	जून	कबीर जयंती/ज्येष्ठ पूर्णिमा
20	जुलाई	देवशयनी एकादशी
21	जुलाई	ईदुज्जुहा*
24	जुलाई	गुरु पूर्णिमा(व्यास पूर्णिमा)
15	अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/तुलसी जयंती
20	अगस्त	मुहर्रम*
22	अगस्त	रक्षाबंधन/श्रावणी पर्व
30	अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
09	सितंबर	हरितालिका
10	सितंबर	गणेश चतुर्थी
11	सितंबर	ऋषि पंचमी
12	सितंबर	बलदेव छठ (देव छठ)
14	सितंबर	राधाष्टमी
17	सितंबर	विश्वकर्मा जयंती/वामन जयंती
20	सितंबर	महालयारंभ/महाप्रयाण दिवस वंदनीया माताजी
25	सितंबर	माता भगवती देवी शर्मा जयंती
02	अक्टूबर	गांधी/शास्त्री जयंती
04	अक्टूबर	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जयंती
06	अक्टूबर	सर्वपितृ अमावस्या
07	अक्टूबर	शारदीय नवरात्रारंभ
15	अक्टूबर	विजयादशमी
20	अक्टूबर	शरद पूर्णिमा/वाल्मीक जयंती
24	अक्टूबर	करवा चौथ
02	नवंबर	धन्वंतरि जयंती/धनतेरस
03	नवंबर	रूप चतुर्दशी/छोटी दीपावली
04	नवंबर	दीपावली
05	नवंबर	अन्नकूट/गोवर्धन पूजा
06	नवंबर	भाईदूज/यमद्वितीया
12	नवंबर	अक्षय नवमी/कूष्मांड नवमी
14	नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी/तुलसी-शालग्राम विवाह/बाल दिवस
19	नवंबर	गुरुनानक जयंती/कार्तिक पूर्णिमा/देव दीपावली
14	दिसंबर	गीता जयंती/मोक्षदा एकादशी
18	दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती
25	दिसंबर	क्रिसमस

* चंद्रदर्शन के अनुसार परिवर्तनीय

Scanned with CamScanner

मंगलवर्ष- 2021

जनवरी

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
31					01	02
03	04	05	06	07	08	09
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

फरवरी

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
	01	02	03	04	05	06
07	08	09	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28						

मार्च

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
	01	02	03	04	05	06
07	08	09	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

अप्रैल

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	
04	05	06	07	08	09	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	

मई

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
30	31					01
02	03	04	05	06	07	08
09	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

जून

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	04
05	06	07	08	09	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

जुलाई

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	
04	05	06	07	08	09	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

अगस्त

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
01	02	03	04	05	06	07
08	09	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

सितंबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	04
05	06	07	08	09	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

अक्टूबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
31					01	02
03	04	05	06	07	08	09
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

नवंबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
	01	02	03	04	05	06
07	08	09	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

दिसंबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	04
05	06	07	08	09	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

Scanned with CamScanner

शुभकामना

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः।।

– अथर्ववेद 6/39/3

जिस प्रकार सूर्य, चंद्रमा और अग्निदेव संसार का कल्याण करते हुए यशस्वी बने, उसी प्रकार सत्कर्म करते हुए हमारा यश भी संसार में फैले। हम सभी मानवमात्र के कल्याण के कार्यों को करने में एक-से-एक बढ़कर गौरवान्वित होने का प्रयास करें।

Scanned with CamScanner

साधना में संयम से मिलती है सिद्धि

एक व्यक्ति हमेशा अपने भाग्य को कोसा करता था। वह बहुत ही गरीब था। दूसरों के खेत में मजदूरी कर वह किसी तरह अपना जीवनयापन किया करता था। एक दिन अपने घर में बैठा वह मन-ही-मन सोच रहा था कि क्या मैं हमेशा गरीब ही रहूँगा? क्या मेरा पूरा जीवन दु:ख और अभावों में ही बीतेगा? क्या मेरे जीवन में भी कभी समृद्धि और खुशहाली आ पाएँगे? तभी उसके अंतस् से आवाज आई, तेरे जीवन में भी समृद्धि और खुशहाली अवश्य आएँगे। यदि तूने सचमुच इसके लिए सही दिशा में सच्चा प्रयास किया तो निश्चित ही तेरे दिन बदलेंगे। एक दिन निश्चित ही तेरे भी अच्छे दिन आएँगे, पर हाँ! इसके लिए तुझे सही दिशा में निरंतर प्रयास करना होगा।

अपने अंतस् से इस प्रकार की प्रेरणा को पाकर वह व्यक्ति मानो अचानक सोये हुए से जाग उठा। उसके मन में कुछ बड़ा कर गुजरने की भाव प्रेरणाएँ जन्म लेने लगीं। वह एक अटल संकल्प के साथ कुछ बड़ा कर गुजरने की संभावना पर विचार करने लगा। वह किसी खास योजना पर काम करने के उद्देश्य से स्वयं से मंत्रणा करने लगा, पर वह कर भी क्या सकता था? न उसके पास कोई जमा पूँजी थी और न ही उस गरीब की कोई मदद करने को तैयार था। फिर वह करे तो क्या करे? तभी उसके मन में विचार आया कि उसके गाँव में उसकी थोड़ी-सी स्वयं की जमीन है। क्यों न उस जमीन पर ही कुछ नया किया जाए?

उसने वर्षों से बेकार पड़ी उस जमीन की साफ-सफाई करनी शुरू कर दी—जिसमें उसे महीनों लग गए। उस जमीन पर अवांछित खरपतवार उग आए थे। उसने उन सब को साफ किया। उस जमीन की कई बार जुताई और सिंचाई की, जिससे कि उसे उर्वर बनाया जा सके और वहाँ कुछ बोया व उगाया जा सके। आखिरकार उसकी मेहनत रंग लाई। बार-बार की जुताई, सिंचाई करने से और उसमें खाद डालने से वह जमीन उर्वर हो गई।

बारिश का मौसम आते ही उसने उस जमीन में आम, अमरूद, अनार, अनन्नास, आँवला, नारियल आदि कई फलदार वृक्षों के बीज बोए। कुछ ही दिनों बाद बीजों में से अंकुर फूट आए, फिर थोड़े ही दिनों में वे पौधे बन के लहराने लगे। यह देखकर उस गरीब व्यक्ति का मन झूमने लगा।

अचानक एक दिन ऐसा हुआ, जिसे देखकर उसका मन पुन: बहुत दु:खी हुआ; क्योंकि एक रात पशुओं के कुछ झुँड वहाँ आए और उन सभी लहराते पौधों को चर गए। उस व्यक्ति ने फिर से हिम्मत जुटाई। पुन: से प्रयास किया और फिर से बीज बोये। बीज पुन: अंकुरित हुए। वे पौधे बने, पर एक दिन अचानक फिर वैसा ही हुआ और तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ कि पशुओं ने उन पौधों को फिर से नष्ट कर दिया। यह देखकर वह व्यक्ति अंदर से हिल-सा गया। टूट गया। स्वयं को सँभालकर उसने पुन: सभी बीजों को बोया। समय पाकर वे फिर से अंकुरित हुए और नन्हे से पौधे बनकर फिर से लहराने लगे, जिसे देखकर उस व्यक्ति का मन एक बार फिर झूमने लगा।

इस बार वह व्यक्ति सावधान था। उसे पता था कि इस बार भी पशु आकर उन पौधों को नष्ट कर सकते हैं, नुकसान पहुँचा सकते हैं और उसकी मेहनत पर फिर से पानी फेर सकते हैं। उसने उन पौधों को चारों ओर से एक मजबूत बाड़े से घेर लिया। अब वे सभी पौधे बाड़े के अंदर सुरक्षित थे। बारिश का मीठा पानी पी-पीकर, खाद-पानी पाकर वे नन्हे से पौधे बड़े होने लगे और देखते-ही-देखते उनमें पुष्प और फल उग आए। फिर वहाँ सुंदर-सा बाग खड़ा हो गया।

उस व्यक्ति ने फलों की बिक्री शुरू कर दी, जिससे उसे अच्छी आमदनी होने लगी। उस आमदनी से उसने जमीन के कई टुकड़े खरीदे और देखते-ही-देखते उसके कई बगीचे खड़े हो गए। यदि बागवान ऐसा हो तो सैकड़ों क्या हजारों बगीचे खड़े होते भी कहाँ देर लगती है? उस व्यक्ति के जीवन में आनंद-ही-आनंद छा गया।

उसके बाग में हजारों लोगों को काम मिलने लगा और यह सब देखकर वह आनंदित था। जैसे भौतिक जीवन

Scanned with CamScanner

में असाधारण पुरुषार्थ से असाधारण सफलता प्राप्त की जा सकती है, वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में भी साधनात्मक पुरुषार्थ से असाधारण सफलता प्राप्त की जा सकती है। साधना के क्षेत्र में भी यदि साधक में उस बागवान-सा संकल्प हो, उत्साह हो, सच्चा प्रयास हो तो साधना से सिद्धि पाते देर नहीं लगती। तब साधक सचमुच साधना के क्षेत्र में नित्य नई-नई चुनौतियों को पार करता हुआ एक दिन निश्चित ही साधना के शीर्ष तक पहुँच ही जाता है।

उस गरीब व्यक्ति की तरह आज जो गई-गुजरी जिंदगी जी रहे हैं, वे भी उस गरीब व्यक्ति की तरह सच्चे प्रयास से एक बड़े बागवान बन सकते हैं। हम एक सामान्य से साधक से असाधारण साधक बन सकते हैं और साधना के शीर्ष को छूकर सर्वोच्च आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त कर सकते हैं। हम गई-गुजरी जिंदगी नहीं, बल्कि एक शानदार जिंदगी जी सकते हैं, परंतु शर्त एक ही है कि हमें भी उस बागवान की तरह अपनी साधना में नियमितता व तन्मयता को बनाए रखना होगा।

हर जीव में नैसर्गिक रूप से ब्रह्मबीज मौजूद हैं। हम सबमें असीम संभावना है। हम भी बीज से वृक्ष हो सकते हैं। हम भी ब्रह्मरूप, ईश्वररूप हो सकते हैं। भले ही आज हम सामान्य व साधारण दिख रहे हों। बीज में भले ही जड़, शाखा, तना, पुष्प, फल, पत्ते आदि दिखाई नहीं देते, परंतु बीज में उनका अस्तित्व विद्यमान है। भले ही वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो। यदि सूक्ष्म न हो तो विराट की कल्पना नहीं की जा सकती। बीज वृक्ष की सुप्तावस्था है और वृक्ष बीज की जागरण अवस्था है, किंतु यह भी सत्य है कि बीज में वृक्ष होने की संभावना होते हुए भी हर बीज वृक्ष नहीं बनता।

हर व्यक्ति नानक, रैदास, कबीर, मीरा, तुलसी, चैतन्य महाप्रभु जैसे विराट नहीं बन पाते, ब्रह्म रूप, ईश्वर रूप नहीं बन पाते। क्यों? क्योंकि बीज से वृक्ष बनने की एक प्रक्रिया है, जिससे गुजरकर ही बीज वृक्ष हो पाता है। मानव—महामानव बन पाता है। सामान्य-सा दिखने वाला व्यक्ति विवेकानंद और आचार्य शंकर के समान महान तथा विराट हो सकता है। स्थिर और निर्जीव-सा प्रतीत होने वाला बीज धरती की कोख में पहुँचकर आकाश, हवा, पानी, सूरज का संस्पर्श पाकर गतिशील हो जाता है। वैसे ही साधना का संस्पर्श पाकर हमारी आत्मा की ब्रह्मशक्ति भी चैतन्य व गतिशील हो जाती है और फिर वही आत्मा एक दिन ब्रह्म रूप-ईश्वर रूप हो जाती है।

ऐसा होने पर हमारी आकृति में तो कोई परिवर्तन नहीं दीख पड़ता, पर हमारी अंतस् प्रकृति में महान घटना घट चुकी होती है। वैसे ही जैसे कभी आचार्य शंकर, गोरखनाथ, महर्षि रमण, महर्षि अरविंद, युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे महान योगियों के अंतस् में घटी थी। उनके अंतस् में सचमुच पूरा ब्रह्मांड उतर आया था। उनमें ब्रह्म उतर आए थे। वे परमात्मा के परम प्रकाश से पूर्णतः प्रकाशित हो चुके थे। जैसे अग्नि का संस्पर्श पाकर समिधा अग्निमय हो जाती है, वैसे ही परमात्मा का प्रकाश पाकर जीवात्मा भी परम प्रकाशित हो जाती है।

इस उपलब्धि के लिए हमें उस बागवान की तरह धैर्य बनाए रखना होता है। साधना-पथ पर बढ़ते हुए साधक को कई चुनौतियों व कठिनाइयों का सामना करना होता है। नित्य नई-नई चुनौतियाँ, नए-नए रूप में हमारे मार्ग में आती हैं। कुछ दिनों की नियमित साधना से हमारे अंतस् के बीज से भी अंकुर निकलना प्रारंभ होने लगते हैं और फिर वे नन्हे पौधे बनकर लहराते हैं। हम भी इतराते हैं कि तभी हमारे चित्त के सुप्त संस्कार नए-नए रूप में, हमारी साधना में नित्य नई विघ्न-बाधाएँ प्रस्तुत करने लगते हैं।

जैसे नन्हे से पौधों को पशु चर जाते हैं, वैसे ही हमारी साधना अभी अंकुरित ही हुई कि तभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष आदि वासनात्मक पशुओं के झुंड आकर हमारी साधना से प्रस्फुटित अंकुर को चट कर समाप्त कर जाते हैं। साधना को खंडित कर जाते हैं। हम कभी काम के वशीभूत हो जाते हैं तो कभी लोभ, मोह और राग-द्वेष के और ऐसी स्थिति में ही हम हताश-निराश होने लगते हैं। फिर साधना में श्रद्धा, तन्मयता, निरंतरता कम होने लगती है। ऐसी स्थिति में साधक करे तो क्या करे?

ऐसी स्थिति में ही साधक में विशेष श्रद्धा, संयम व धैर्य की आवश्यकता होती है, ताकि हम स्वयं को पुनः से सँभाल सकें और साधना-पथ पर पुनः नई उमंग व ऊर्जा के साथ गतिशील हो सकें। हमारे अंदर के सुप्त संस्कारों के पशु हमारी साधना को खंडित न कर सकें, इसलिए हमें भी स्वयं को बाड़े के अंदर सुरक्षित रखना होता है। वैराग्य की परम बलवती भावना ही वह बाड़ा है, जिससे हम अपने लिए सुरक्षा का घेरा तैयार करते हैं। मन में वैराग्य की

Scanned with CamScanner

भावना जितनी प्रबल एवं बलवती होगी, हमारी साधना उतनी ही तीव्र व गतिशील होगी और कुसंस्कारों के पशुओं से सुरक्षित रहेगी।

एक दिन जब हमारी वैराग्य की भावना सचमुच दृढ़ और परम बलवती हो जाती है, तब वहाँ पशुओं का आना ही बंद हो जाता है; क्योंकि वैराग्य के बाड़े को पार करना उनके लिए कतई संभव नहीं होता। इसलिए तो स्वामी रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों को कहा करते थे कि कोई पौधा जब तक छोटा है, तभी तक उसे बाड़े में रखना होता है; क्योंकि तब उसे पशुओं द्वारा चरे जाने का भय रहता है। परंतु जैसे ही वह पौधा विराट वृक्ष बन जाता है—वैसे ही उन बाड़ों को हटा दिया जाता है, अब उस विराट वृक्ष से किसी बड़े हाथी को भी बाँध दो तो उस वृक्ष का कोई नुकसान नहीं होता; क्योंकि अब वह पौधा विराट वृक्ष बन चुका होता है।

उसमें बड़े होने पर पशुओं द्वारा उसके चरे जाने या नष्ट किए जाने की संभावना ही नहीं रही—चाहे उसे बाड़े में रखो या बाड़े के बाहर रखो। वैसे ही साधक को प्रारंभ में संयम, वैराग्य आदि के बाड़े में रहना होता है और जब साधक में संयम व वैराग्य की भावना स्थायी व नैसर्गिक हो जाती है, तब फिर बाड़े की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी इसलिए साधक को इंद्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम आदि बाड़े के अंदर रहने की सीख दी है, जिससे साधक की साधना में कोई विघ्न न आए और वह साधना के उच्चतम शिखर को छू सके।

साधना के परिपक्व होते ही तथा चित्त के पूर्णतः पवित्र होते ही साधक के हर कर्म में अकर्म ही घटित होने लगता है। वह हर्ष-विषाद, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि द्वंद्वों से परे व पार हो जाता है; क्योंकि किसी भी प्रकार के कर्मफल के प्रति उसकी कोई आसक्ति ही नहीं रह जाती। वह संसार में रहता है, परंतु संसार के विकार उसे छू नहीं पाते, प्रभावित नहीं कर पाते। संसार में भी वह वैसे ही रहता है; जैसे कि जल में कमल। जल में रहकर भी कमल जल के संस्पर्श से दूर ही रहता है।

ऐसी स्थिति को प्राप्त होते ही साधक हर पल आनंदित, प्रफुल्लित, मुक्त एवं जीवनमुक्त हो जाता है। उसके आंतरिक एवं आत्मिक आनंद की कोई सीमा, कोई पारावर नहीं रहता और उसका सान्निध्य पा औरों का जीवन भी प्रकाशित हो जाता है। ऐसे में वह स्वयं भी औरों को आह्लादित व प्रकाशित करने में समर्थ एवं सक्षम होता है। ऐसे में साधकों के लिए यह नितांत स्मरणीय है कि एक तरफ अपनी साधना में श्रद्धा, विश्वास, तन्मयता व निरंतरता बनाए रखकर उसे आवश्यक खाद-पानी देते रहें तो वहीं दूसरी तरफ उसे संयम, सेवा, सदाचार व वैराग्य के बाड़े से घेरकर सुरक्षित भी रखें जिससे साधना पूर्ण व परिपक्व हो सके। संयम से ही साधना पूर्ण होती है, इसलिए साधना में संयम है जरूरी। साधना में संयम हो तो मिलती है सिद्धि। ❑

एक व्यक्ति अपने बचपन के साथी के पुत्र रामजी के यहाँ आए। रामजी ने अपने पिता के मित्र का स्वागत-सत्कार किया और उन्हें भोजन परोसा। उन्होंने जैसे ही भोजन का एक कौर मुँह में रखा तो वे बोले—"बेटा! यह भोजन तो बासी है।" रामजी बोला—"यह भोजन तो अभी बनाकर आपको परोसा गया, फिर आप इसे बासी कैसे कह रहे हैं?" वृद्ध बोले—"बेटा! मेरे मित्र ने कितने कष्ट से पैसा कमाया। उन्हें गुजरे एक वर्ष ही बीता है, इसी बीच तुमने आधी संपत्ति उड़ा दी, अब आगे क्या करोगे? तुम अपने परिश्रम से कमाये धन से भोजन बनवाते तो मैं उसे ताजा कहता।"

रामजी की समझ में उनकी बात आ गई। उसने कहा—"मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि अब मैं श्रम करके धन कमाऊँगा और उसी से अपना व परिवार का पालन-पोषण करूँगा।" वे यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी राह चले गए।

Scanned with CamScanner

चेतना की शिखर यात्रा – 220

विडंबना और तथ्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि आंध्र प्रदेश से रवि वर्मन नामक एक व्यक्ति स्वयं की शारीरिक दुर्गति के उद्धार हेतु एक आखिरी आस लिए पूज्य गुरुदेव से मिलने शांतिकुंज पहुँचा। संत-महात्माओं के आशीर्वाद के चमत्कार से घटित हुईं सुनी-सुनाई घटनाओं के आधार पर स्वास्थ्य-अर्जन की मंशा से आए रवि वर्मन को पूज्यवर ने उसकी चित्र-विचित्र कल्पना के ठीक विपरीत यथार्थ की भूमि पर उतारकर चिकित्सकीय उपचार का समाधान सुझाया। इसके साथ ही उसे यह भी समझाया कि महात्माओं एवं बड़ों की दुआओं का असर भी तभी फलित होगा, जब धरातलीय व्यवस्था यथासंभव अनुरूप बनाई जाए। समय बीतने के साथ समुचित उपचार व पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद के फलस्वरूप उसके स्वास्थ्य में विलक्षण सुधार आए।

देश में लागू हुए आपातकाल के दौर में अध्यात्म-क्षेत्र के संत-महात्माओं के लौकिक जगत में फलित हो रहे चमत्कारों की चर्चा को उन दिनों प्रकाशित हो रहे पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अनावश्यक हवा दी जा रही थी। पुट्टपर्ती के सत्य साईं बाबा के चमत्कार उनमें शीर्ष स्थान पर थे, जिन्हें लेकर छिड़े विवाद व छप रही आलोचनाओं की ही भरमार दीख पड़ती थी। इन विवादों को लेकर गायत्री परिजनों में भी आपसी विमर्श एवं विश्लेषण जारी था, किंतु पूज्यवर के समक्ष इन विवादों के समाधान का आग्रह लेकर पहुँचे लोगों को प्रायः निराशा ही हाथ लगती। कर्म-फल विधान आधारित पुण्यपरंपरा के पक्षधर पूज्य गुरुदेव अध्यात्म की यथार्थता को आत्मोद्धार की परिणति में फलित होने में ही उसे सार्थक ठहराते थे। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण .....

इसके बाद गुरुदेव ने आज की दिनचर्या यानी दिनभर के कामों के बारे में पूछ लिया। इस तरह पहाड़िया जी के मन में उत्पन्न हुई उत्सुकता और कुतूहल का समाधान हुआ। उन्हें ग्लानि के साथ अपने गुरुदेव पर, उनके शिष्यत्व पर गर्व की अनुभूति होने लगी। उस अनुभूति की मस्ती में वे झूमते हुए से अपने कमरे में आए। भोजन किया और कुछ देर के लिए कुरसी पर बैठ गए।

सुबह चार बजे उठने के बाद वे आठ, नौ बजे तक प्रातःकालीन क्रियाकृत्य निपटा लेते थे और भोजन के बाद अखण्ड ज्योति पत्रिका या गुरुदेव की लिखी पुस्तकें पढ़ा करते थे। जिस दिन की यह घटना है, उस दिन वे 'सर्वोपयोगी सुलभ साधना' पढ़ रहे थे। पुस्तक में एक ध्यान का वर्णन है। उस विधि में साधक अपने आप को भगवान की या अपने इष्टदेव की गोद में बैठा अनुभव करता है। आठ-दस माह के शिशु की भाँति वह अपनी अभिभावक सत्ता के साथ बालसुलभ क्रीड़ाएँ करता और जिस गोद में वह बैठा होता है, उसका लाड़-दुलार अनुभव करता रहता है। पहाड़िया जी वह प्रकरण पढ़ ही रहे थे कि उन्हें एक विचित्र अनुभव होने लगा। सामने गुरुदेव की आकृति उभरने लगी। वह आकृति उभरती और फिर लुप्त हो जाती, उसके बाद उनका स्वयं का आपा दिखाई देता। फिर स्वयं की छवि लुप्त हो जाती और गुरुदेव का बिंब उभरता। यह क्रम तीन-चार बार चला और अनुभव हुआ कि अपने सिर पर लंबे बाल उग आए हैं। शरीर पर धारण किया कुरता लंबा हो गया और चोगे में बदल गया है। स्वयं को इस रूप में देखकर हैरानी हुई। फिर दिखाई दिया कि सामने गुरुदेव खड़े हैं और जैसे कह रहे हैं कि तुम हाथ से, पैर से या बालों से और चित्रों से भस्म-प्रसाद निकलने को चमत्कार मानते हो। तुम्हारे इसी शरीर से भस्म-प्रसाद के साथ रत्न आभूषण और सर्प-बिच्छू भी प्रकट हो सकते हैं। ऐसा करना चाहोगे।

दृश्य देखकर पहाड़िया जी डर से गए। फिर गुरुदेव को सामने देखकर तुरंत सहज भी हो गए। उन्होंने तपाक से

Scanned with CamScanner

कहा—"नहीं गुरुदेव। कुछ नहीं चाहिए। कोई चमत्कार नहीं चाहिए।" पहाड़िया जी इस दृश्य या भाव अनुभूति में खोए हुए थे कि बाहर से किसी ने आवाज लगाई। आवाज सुनकर वे भाव-समाधि से बाहर आए और दरवाजे के बाहर खड़े कार्यकर्त्ता की बात का जवाब देने लगे। उन दिनों समाचार विश्व की किन्हीं महत्त्वपूर्ण घटनाओं से या उनकी सूचनाओं से शून्य था तो धर्मजगत के समाचार ही छाए हुए थे। शायद शून्य ही कारण था कि इस क्षेत्र की हलचलें वातावरण में गूँज रही थीं या वे हलचलें कारण रही होंगी कि समाज और राजनीति की सामान्य घटनाओं को स्थान नहीं मिल पा रहा था। 1976-77 के वर्षों में चमत्कारी महात्माओं के अलावा आधुनिकता के नाम पर हेय प्रवृत्तियों को स्वाभाविक और सहज बताने का फैशन भी चल पड़ा था। काम-वासना से ऊपर उठकर आत्मचेतना को परिष्कृत करना निश्चित ही आध्यात्मिक व्यायाम है।

इस सत्य की ओट में आचार्य रजनीश, (बाद में ओशो) तेजी से उभर रहे थे। चुटीली, वाग्मितापूर्ण शैली में अपनी बातों को रखने और भारतीय धर्मशास्त्रों, आप्तवचनों को अपने ढंग से परिभाषित करने के लिए विख्यात ओशो उन दिनों युवाओं में चर्चित हो रहे थे। गुरुदेव तक भी उनकी सूचनाएँ पहुँच रही थीं। गुरुदेव उनकी गतिविधियों पर कोई टिप्पणी या प्रतिक्रिया नहीं करते थे। संभवतः 1976 के अक्टूबर मास की ही कोई तिथि थी। पूना से ओशो के एक नजदीकी कार्यकर्त्ता स्वामी योगभारती गुरुदेव के पास आए। उन्होंने अपना परिचय दिया कि वे भगवानश्री (ओशो तब इसी नाम से जाने जाते थे) के प्रवचनों में पूछे जाने वाले प्रश्नों और उनके उत्तर के लिए आवश्यक तथ्यों की शोध करते हैं। उसके लिए आवश्यक जानकारी जुटाते हैं। यहाँ आने का उद्देश्य वेद-उपनिषदों के गूढ़ रहस्यों की कुछ कुंजियाँ प्राप्त करना है। भगवानश्री भावी प्रवचन शृंखलाओं में वेदों के रहस्य उद्घाटित करने की योजना बना रहे हैं।

वेद-शास्त्रों का अध्यात्म-भाष्य

ओशो के शिष्य इस शोध-अनुसंधान के लिए दूसरे आश्रमों में भी गए थे। श्रीअरविंद आश्रम पांडिचेरी, स्वाध्याय मंडल पारडी, वेद संस्थान गंगेश्वर धाम, दिल्ली और आर्य साहित्य मंडल, अजमेर आदि उनमें से कुछ आश्रमों के नाम थे। स्वामी योगभारती ने इस सबकी जानकारी दी तो गुरुदेव ने अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। अतिथि ने अपनी आवश्यकता के बारे में फिर दोहराया तो गुरुदेव ने कहा—"वेदों का जितना लौकिक और वाचिक अनुवाद भाष्य किया जा सकता था, वह दस साल पहले किया जा चुका है। उसके अगले चरण पर हम लोग काम कर रहे हैं। लेकिन वह पार्थिव कम और चेतना के स्तर पर ज्यादा है। भगवानश्री (गुरुदेव ने पूना से आए नवसंन्यासी की श्रद्धा-भावना का निर्वाह करने के लिए इसी नाम से संबोधित किया) तक हम लोगों का संदेश पहुँचाना कि इस स्तर पर काम होने के बाद हम स्वयं ही उन तक संदेश पहुँचा देंगे। यह अनुरोध भी पहुँचाइएगा कि हो सके तो आर्षपरंपरा की साधना विधियों के बारे में भी अपने अनुयायियों को बताएँ।"

ओशो ने कुछ समय पहले अपने एक वक्तव्य में गुरुदेव के संबंध में कहा था कि वे परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सेतु हैं। इसलिए हमारे (ओशो) काम में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इस वक्तव्य के कुछ ही सप्ताह बाद उनके सहयोगी योगभारती शांतिकुंज आए और वेद-उपनिषदों के संबंध में गुरुदेव से परामर्श या दिग्दर्शन लेकर गए। यह संयोग था या गुरुदेव के परामर्श का प्रभाव कि ओशो ने गायत्री मंत्र पर अपना प्रसिद्ध वक्तव्य दिया। उन्होंने मंत्र के आध्यात्मिक रहस्य और साधक की स्थिति के अनुसार इसके प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता को अपनी परिचित शैली में परिभाषित किया। इससे पहले के वक्तव्यों में ओशो गायत्री मंत्र और उपासना की कड़ी आलोचना करते रहे थे। बाद में उन्होंने इसकी प्रचलित उपासना-विधि और भाव तथा समझविहीन साधना को तो आड़े हाथों लिया, लेकिन मंत्र विज्ञान को कभी गलत नहीं ठहराया। योगभारती के अनुसार ओशो कहा करते थे कि साक्षी भाव से एकाग्रतापूर्वक जपा गया गायत्री मंत्र व्यक्ति के अंतर्जगत में ऊर्जा का संचार कर देता है। उन्होंने यह बात दोबारा शांतिकुंज आने पर कुछ वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं को भी बताई थी।

आसन सिद्धि का रहस्य

1976-77 के वर्ष में एक और आध्यात्मिक उपक्रम वितंडा योग तथा कुंडलिनी-साधना के संबंध में भी उठ रहा था। भारत से योग का संदेश लेकर पश्चिमी जगत में गए एक योगी जोर-शोर से दावा कर रहे थे कि उनकी बताई विधि से साधना करने वालों का आसन उठने लगता है। पालथी मारकर बैठने और उन योगी के बताए मंत्रों का जप करने से साधक का शरीर इतना हलका हो जाता है कि अपने

Scanned with CamScanner

आप छह इंच से लेकर दो फुट तक ऊपर उठ जाता है। आसन उठने के दावे की पुष्टि करते हुए कुछ साधकों के चित्र भी अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में छपे थे। कुछ महीनों तक इस दावे के आधार पर योग विज्ञान की बड़ी चर्चा हुई। बाद में उन योगी ने इस ध्यान सिद्धि का प्रदर्शन भी शुरू किया। बता देना उचित होगा कि महर्षि महेश योगी के नाम से विख्यात हुए उन्हीं संत ने वेद मंत्रों के वैज्ञानिक आधार की विवेचना के लिए कई आयोजन, अभियान और संस्थान चलाए। उससे उनकी ख्याति भी फैली, लेकिन 'आसन सिद्धि' का वह प्रचार योग को खास लोकप्रिय नहीं बना पाया। इस सिद्धि के प्रदर्शन के बाद साफ हो गया कि साधकों का आसन ध्यान और जप के समय अपने आप नहीं उठता, बल्कि अभ्यास के दौरान वे बैठे-बैठे ही उछलने लगते हैं। इस तरह के प्रदर्शन की आलोचना हुई तो महर्षि के ध्यान-शिक्षकों ने स्पष्टीकरण दिया। वे कहने लगे कि आसन सिद्धि का यह प्रारंभिक चरण है। अभ्यास में गति और गहराई आने के बाद साधक को 'हॉबिंग' की जरूरत नहीं पड़ती। यह प्रक्रिया अपनाते समय उसका आसन स्वत: स्थिर हो जाता है।

शांतिकुंज में चल रहे साधना शिविर में गुरुदेव ने एक प्रश्न के उत्तर में कथित 'आसन सिद्धि' के बारे में स्पष्ट किया था। शिविरार्थी जिस साधना-उपासना का अभ्यास करते थे, उसमें किसी तरह की सिद्धि या चमत्कारी क्षमता का आश्वासन नहीं होता था। स्वाभाविक ही था कि योग के चमत्कारों की सूचनाओं और दावों के बारे में सुनकर साधक भी उत्सुक होने लगे थे। गुरुदेव को अपनी अनुभूतियों, आवश्यकताओं और निजी समस्याओं के बारे में लिखे जाने वाले पत्रों में वे इस विषय में जिज्ञासा करते थे। इस तरह के एक प्रश्न का समाधान करते हुए गुरुदेव ने कहा कि स्थिरतापूर्वक सुख से बैठना और अपनी उपासना-विधि का अभ्यास करना ही आसन सिद्धि है। भगवान पतंजलि ने अपने योगशास्त्र में आसन की यही परिभाषा की है। इससे अधिक किसी चमत्कार की आशा नहीं करनी चाहिए। यदि कोई साधक अपेक्षा रखता है तो उसे रामकृष्ण परमहंस के उस प्रसंग को याद रखना चाहिए, जिससे उन्होंने एक सिद्धि प्राप्त महात्मा की चुनौती का उत्तर दिया था।

(क्रमश:)

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से कहा—"बीरबल तुम्हें काला कोयला सफेद करके दिखाना है।" बीरबल सकते में आ गए, लेकिन बादशाह का आदेश था, इसलिए युक्ति सोचने लगे। उन्होंने बादशाह से कहा—"हजूर! कुछ समय दिया जाए, फिर कोयला सफेद करके दिखाऊँगा।"

कुछ दिनों बाद बीरबल दरबार में पहुँचे। बीरबल की चतुराई देखने लोगों का जमघट लग गया। बीरबल ने काले कोयले को सबके सामने रखा और उसमें आग लगा दी। कोयला धू-धू करके जलने लगा। जलकर कोयला अंगार बना और अंगार जब बुझा तो सिर्फ सफेदी के अलावा कुछ भी नहीं था।

सभी समझ गए कि कोयले को सफेद करने का उपाय संसार में सिवाय अग्नि-संस्कार के कोई दूसरा नहीं है। इसी तरह चित्त के ऊपर भी कुसंस्कारों की कालिख चढ़ जाती है और चित्तशुद्धि के लिए उसे तपस्या की अग्नि में तपाना पड़ता है।

Scanned with CamScanner

देवर्षि नारद की पत्रकारिता

आधुनिक मीडिया को देखकर कई बार लगता है कि यह अपने पारंपरिक स्वरूप एवं उद्देश्य से निरंतर भटकती जा रही है। बात चाहे मानवता से जुड़े मुद्दों की हो या फिर समाज की ज्वलंत समस्याओं की—इन सभी को लेकर मीडिया की कम होती संवेदनशीलता स्पष्ट दिखाई देती है। ऐसे में हमारी भारतीय परंपराओं में संचार के माध्यम से समाज को संकट से बचाने के लिए देवर्षि नारद का स्वत: ही स्मरण हो आता है।

एक तरफ जहाँ वर्तमान मीडिया अपने निहित स्वार्थों एवं पूर्वाग्रहों पर चर्चा कर रहा है तो वहीं दूसरी ओर देवर्षि नारद का संचार एवं पत्रकारिता का दृष्टिकोण मीडिया और समाज के समक्ष एक अलग उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनसे जुड़ी घटनाओं को जानकर आसानी से यह समझा जा सकता है कि किस तरह से संचार को समाज और मानवता के हित में उपयोगी एवं प्रभावी बनाया जा सकता है।

देवर्षि नारद एक ऐसे संचारक थे जिन्होंने मानवता की रक्षा के लिए कई ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए, जो आज के समय में कदापि संभव दिखाई नहीं देते हैं। देवर्षि नारद मनुष्यों के दु:ख और दरद को उस समय देवताओं तक पहुँचाने का काम करते थे। दानवों द्वारा मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने के प्रयासों को उन्होंने ही कई बार असफल किया। महाभारत का युद्ध हो या फिर बालि अथवा रावण का वध, पुराणों और हिंदू ग्रंथों में देवर्षि नारद के मानवतापरक प्रयासों का ही अधिकतर उल्लेख होता है।

पुरातनकाल में जिन संचारकों का उल्लेख होता है, उनमें वे सर्वोपरि माने गए। उनके संदेशों में सदैव मानवता एवं लोकहित की भावना का समावेश देखने को मिला। सृष्टि की रक्षा के लिए उन्होंने कई ऐसे कार्य किए, जिनका उल्लेख ग्रंथों में मिलता है। उन्होंने ही देवलोक का भ्रमण कर संचार के माध्यम से सूचनाओं को पहुँचाकर बालक ध्रुव और प्रह्लाद की माँ को जीवनदान प्रदान करने में मदद की।

वर्तमान मीडिया में मानवीय दृष्टिकोण लगातार उपेक्षित होता नजर आ रहा है। देश की सुरक्षा, सामाजिक सरोकार एवं संवेदनशील मुद्दों पर चुप्पी साधने वाली मीडिया की दिशा समझ से परे है। मीडिया को निर्भीक, निडर एवं निष्पक्ष भाव से विचार रखना चाहिए। इन सब बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

समाज की संवेदनाओं के प्रति मीडिया को क्या भूमिका निभानी चाहिए यह जानने के लिए पहले हमें यह समझना होगा कि नारद जी किस तरह से संचार का उपयोग समाज की भलाई के लिए किया करते थे? मीडियाकर्मियों के लिए कोई विशेष कानून चाहे न हो, लेकिन नैतिकता के लिहाज से उन्हें नारद के भक्तिसूत्र को अवश्य पढ़ना चाहिए। नारद भक्तिसूत्र के चौरासी सूत्रों का अगर विश्लेषण किया जाए तो पता चलता है कि उनमें लोकहित छिपा है। नारद के भक्तिसूत्र में लिखित हर अध्याय को अगर ध्यान से पढ़ा जाए तो निश्चित तौर पर मीडियाकर्मियों के लिए एक उचित आचार संहिता का निर्माण किया जा सकता है।

पुराणों में भी भक्ति का उल्लेख करते हुए दूसरों का हित करने की इच्छा, कल्याण की भावना, वाणी में शुद्धता जैसी बातों को अपनाने की बात कही गई है। तृतीय अध्याय में तैंतालीसवें सूत्र में '**दु:संग सर्वथैव त्याज्य:।**' के माध्यम से बुरे संग का त्याग करने एवं सत्संगति की बात कही गई है। एक अन्य सूत्र में काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रम, विवेकनाश आदि से बचकर कार्य करने की बात कही गई है।

आज की मीडिया में भी इन बातों से बचना मीडियाकर्मियों के लिए पहली चुनौती बन गया है। एक अन्य सूत्र में मोह, माया और भ्रम से दूरी बनाने की बात का उल्लेख है। इसके अलावा वह व्यक्ति जो मानवता और लोकहित की भावना के साथ चले, उसे लोकहानि की चिंता नहीं होती है, ऐसा उल्लेख भी छठवें अध्याय में मिलता है। चौंसठवें भक्तिसूत्र '**अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्।**' में

Scanned with CamScanner

उल्लेख है कि अभिमान, दंभ आदि इस प्रकार की मन की दूषित भावनाओं का त्याग कर देना चाहिए।

एक बेहतर व्यक्तित्व में क्या गुण होना चाहिए, इसका उल्लेख भी एक सूत्र में मिलता है। अंतिम अध्यायों में मनुष्य को अहिंसा, सत्य, शुद्धता, दया, सच्चरित्र तथा अनुपालन करने संबंधित बातों का उल्लेख है। समाज में सद्गुणों की रक्षा के लिए ये सभी आवश्यक गुण हैं, जिनका समावेश मीडिया शिक्षा में भी किया जाना चाहिए। इस तरह नारद का भक्तिसूत्र एक बेहतर मीडियाकर्मी के लिए आवश्यक आचार संहिता के रूप में भी अपनाया जा सकता है।

देवर्षि नारद के इन्हीं गुणों के कारण उनसे संबंधित साहित्य मीडिया शोध का विषय बना हुआ है। अनेक शिक्षण संस्थानों; खासतौर से मीडिया से जुड़े संस्थानों ने इन पर बाकायदा शोध कराने की पहल भी की है। माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के अध्ययन के लिए पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया गया है। इसके लिए वहाँ के कुलपति के प्रयास निश्चित तौर पर सराहनीय हैं।

वर्तमान मीडिया में समाज के प्रति संवेदना लाने और मानवता के पहलुओं पर ध्यान देने के लिए आवश्यक है कि देवर्षि नारद के संचार को और अधिक बेहतर ढंग से समझा जाए। खासतौर पर आज की मीडिया की कार्यप्रणाली में सुधार लाने के लिए इसका किस तरह उपयोग हो सकता है इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

मीडिया शिक्षा में अगर पुरातन परंपराओं और संचार के नारद मॉडल को जोड़ा जाए तो निश्चित ही समाज के लिए वर्तमान मीडिया और अधिक सार्थक साबित हो सकता है। इस तरह मीडिया एक सुदृढ़ स्तंभ है और ऐसा ही बने रहने के लिए अपना स्व-मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। ❑

भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक हिंदी के जनक कहे जाते हैं। उनका संबंध बनारस के एक समृद्ध परिवार से था, परंतु परिस्थितियोंवश वे सर्वथा धनहीन हो गए। उनकी स्थिति ऐसी हो गई कि मित्रों की डाक में आई चिट्ठियों का जवाब देने के लिए भेजे जाने वाले लिफाफों और पत्रों पर गोंद लगाने के लिए पैसे भी नहीं रह गए। वे डाक में आई चिट्ठियों का उत्तर लिखकर सादे लिफाफे में रखते जा रहे थे और उन पर पते लिखकर एक ढेर में रखते जाते थे।

एक दिन उनसे मिलने उनके एक मित्र आए। उन्होंने मेज पर भारतेंदु के नाम आई चिट्ठियाँ तथा दूसरी ओर पते-लिखे सादे लिफाफों में उनके उत्तर देखे। उस घटना के बाद जब उक्त मित्र भारतेंदु से फिर मिलने आए तो उन्होंने उनकी जेब में पाँच रुपये का एक नोट जबरदस्ती डाल दिया, जिसका उन्होंने विरोध किया। इस पर उनके मित्र ने उलाहना देते हुए कहा—"इसका अर्थ यह हुआ कि मैं तुमसे मिलने न आया करूँ।" बाद में जब भारतेंदु के पास पुनः संपत्ति आ गई तो उन्होंने बहुत सारा धन मित्र को देते हुए कहा—"तुमने ऐसे संकट के समय मुझे वे पाँच रुपये दिए कि मैं उसका बदला नहीं चुका सकता। मैं प्रतिदिन भी पाँच रुपये तुम्हें लौटाऊँ तब भी इनसानियत का यही तकाजा और यही माँग होगी कि मुझ पर तुम्हारा तकाजा बचा हुआ है।"

Scanned with CamScanner

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार– 141

भय एवं चिंता पर महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक शोध

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखना एक अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य है। जीवन में आने वाली चुनौतियों, संघर्षों, अस्त-व्यस्त जीवनशैली, स्वार्थ एवं संकीर्णताओं में सिमटते संबंधों जैसे अनेक कारण हैं, जिनका सीधा प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य में परेशानी के रूप में सामने आता है। ऐसी परेशानियों का समय रहते निदान एवं उपचार न किया जाए तो ये कालांतर में पूरे जीवन को तहस-नहस कर समाप्त कर देती हैं।

डर और चिंताएँ ये दो ऐसी ही मानसिक अवस्था हैं, जो धीरे-धीरे जीवन को खोखला कर देती हैं। वयस्क जीवन में ये समस्याएँ सामान्यतया बहुतों में दिखाई देती हैं। कैरियर, संबंध, नौकरी, सुरक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति जैसे अनेक कारणों से लोगों के मन में प्राय: डर या चिंता जैसी विकृति उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी कई कारण होते हैं, जो अतीत एवं भविष्य के प्रति नकारात्मक नजरिये अथवा घटनाओं की वजह से डर एवं चिंता को उत्पन्न करते हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत डर एवं चिंता जैसी विकृतियों के सार्थक समाधान प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् 2017 में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन शोधार्थी श्रद्धा त्रिपाठी द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं निर्देशन तथा डॉ. राजेश कुमार जी के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ हिप्नोटिक रिग्रेशन ऑन फोबिया एंड एंग्जाइटी सिंपटम्स इन एडल्ट्स'**।

शोधार्थी द्वारा अपने अध्ययन कार्य के प्रयोग हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक चिकित्सा एवं परामर्श केंद्र के माध्यम से उद्देश्यपरक चयन विधि का उपयोग करते हुए 50 लोगों को चयनित किया गया। इन सभी की उम्र 18 से 50 वर्ष के मध्य थी एवं सभी ने न्यूनतम हाईस्कूल या उससे ज्यादा शिक्षा प्राप्त की थी। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित लोगों का मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण हेतु जो उपकरण प्रयुक्त किए गए वे हैं—मार्क एवं मैथ्यूज (1979) द्वारा निर्मित फीयर क्वेश्चनेयर और (FQ), गीर (1965), वोल्प एवं लन्ग (1964) द्वारा निर्मित फीयर सर्वे शेड्यूल III (FSS III) एवं सिन्हा एंड सिन्हा (1995) द्वारा निर्मित सिन्हास कॉम्प्रिहेन्सिव एंग्जाइटी स्केल (SCAT)। इसके पश्चात तीन माह की अवधि तक शोधार्थी द्वारा प्रयोग हेतु चयनित लोगों का हिप्नोटिक रिग्रेशन विधि द्वारा उपचार किया गया। उपचार के दौरान प्रयुक्त विधि से संबंधित सभी आवश्यक पहलुओं का ध्यान रखा गया।

अध्ययन की निर्धारित अवधि पूर्ण होने पर शोधार्थी द्वारा पूर्व की ही भाँति पुन: परीक्षण किया गया। परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने शोध परिणाम के रूप में यह पाया कि हिप्नोटिक रिग्रेशन उपचार विधि का वयस्कों के भय एवं चिंता स्तर पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शोध निष्कर्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिप्नोटिक रिग्रेशन को भय और चिंता के मरीजों के उपचार में एक चिकित्सा विधि के रूप में अपनाया जा सकता है।

इस अध्ययन में सार्थक और सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं एवं उनकी मुख्य वजह है—शोधार्थी द्वारा चयनित विशिष्ट उपचार विधि। हिप्नोटिक रिग्रेशन अर्थात सम्मोहन के द्वारा अतीत की स्मृतियों में जाना और फिर मनोवैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा अतीत के उन कारणों, स्मृतियों से व्यक्ति को बाहर लाना, जिनका नकारात्मक प्रभाव उसके वर्तमान जीवन पर पड़ रहा होता है।

यह प्रक्रिया एक कृत्रिम निद्रावस्था के समान होती है, जिसमें व्यक्ति का शरीर तो शिथिल हो जाता है, परंतु उसका अचेतन मन सक्रिय हो जाता है। इस चिकित्सा के द्वारा न केवल अतीत की स्मृतियों तक पहुँचा जा सकता है अपितु

Scanned with CamScanner

मनोवैज्ञानिक पद्धति से व्यक्तित्व संबंधी अनेक परेशानियों से मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है।

हिप्नोटिक रिग्रेशन मनोवैज्ञानिक चिकित्सा क्षेत्र की एक ऐसी विशिष्ट तकनीक है, जिसमें व्यक्ति की आंतरिक चेतना की अवस्थाओं में परिवर्तन कर पाना संभव हो पाता है। चिकित्सक इस विधि के द्वारा व्यक्ति को कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव देता है, जो उसके अचेतन मन से संबंधित होते हैं और व्यक्ति इन सुझावों पर अमल भी करने लगता है। इस तकनीक से उपचार का उद्देश्य वर्तमान से जुड़ी भय, चिंता, अवसाद जैसी परेशानियों की जड़ तक पहुँचना होता है और वहाँ पहुँचकर ऐसी परेशानियों के मूल कारणों को वहीं छोड़ देने का निर्देश दिया जाता है, ताकि व्यक्ति की वर्तमान समस्या का समूल समाधान किया जा सके।

वर्तमान में मानसिक स्वास्थ्य के लिए जिन व्यवहार अध्ययन आधृत पद्धतियों एवं औषधियों का उपयोग किया जाता है, उनसे अतीत से जुड़ी मानसिक समस्याओं का उचित समाधान नहीं हो पाता है। भारतीय शास्त्रों एवं सिद्धांतों में अनेक स्थान पर यह उल्लेख है कि व्यक्ति के कर्म, आचरण एवं व्यवहार पर उसके पूर्व संस्कारों, वृत्तियों का गहरा प्रभाव होता है। इसी क्रम में आधुनिक मनोचिकित्सा विज्ञान ने व्यक्ति के अवचेतन मन के विश्लेषण में यह पाया कि पिछली स्मृतियाँ एवं घटनाएँ व्यक्ति के वर्तमान को प्रभावित करती हैं। ऐसे में इस दिशा में शोध अनुसंधान के लिए अनेक दृष्टिकोणों से प्रयास किए जा रहे हैं। यह शोध अध्ययन भी इन्हीं प्रयासों में से एक महत्त्वपूर्ण कड़ी कहा जा सकता है।

यद्यपि आधुनिक मनोचिकित्सा की दृष्टि से हिप्नोटिक रिग्रेशन की तकनीक सुरक्षित एवं प्रभावी है तथा गंभीर मानसिक समस्याओं के उपचार में अत्यंत सहयोगी प्रक्रिया है तथापि इसके उपयोग में कुछ महत्त्वपूर्ण सावधानियों और योग्यताओं की भी आवश्यकता होती है। यह उपचार-विधि उसी पर ज्यादा कारगर एवं प्रभावी होती है, जो मरीज स्वयं इसके माध्यम से उपचार के लिए तैयार हो एवं उसे चिकित्सक पर पूरा विश्वास हो। चिकित्सक में भी ऐसी योग्यता का होना आवश्यक है, जिससे वह बीमार व्यक्ति की ज्ञानेंद्रियों और स्वयं की मनोवैज्ञानिक एवं अंत:ज्ञानयुक्त क्षमता में सामंजस्य स्थापित कर सटीक निदान एवं उपचार की प्रक्रिया को संपन्न कर सके।

इस अध्ययन में शोधार्थी ने इस तकनीक से उपचार करने के लिए हिप्नोटिक रिग्रेशन की संपूर्ण उपचार-प्रक्रिया को अलग-अलग स्तरों में विभाजित कर उनके क्रमश: क्रियान्वयन को समझाया है; जैसे—व्यक्ति की समस्याओं को जानना एवं उनके संबंध में व्यक्ति को परामर्श देना, मानसिक स्वास्थ्य एवं उपचार के सकारात्मक पहलुओं को समझाना तथा उपचार-विधि के विषय में आश्वस्त करना एवं विश्वास प्राप्त करना आदि। इसके पश्चात सावधानीपूर्वक उपचार की प्रक्रिया को संपन्न करना और व्यक्ति को परेशानी से मुक्ति दिलाना होता है। शोधार्थी द्वारा शोध प्रविधि के अंतर्गत इस तकनीक से उपचार के सभी आवश्यक पक्षों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है।

शोध अध्ययन के निष्कर्ष के आधार पर शोधार्थी का मत है कि इस अध्ययन में हिप्नोटिक रिग्रेशन विधि का प्रभाव केवल भय एवं चिंता के लक्षणों पर ही केंद्रित रखा गया है, किंतु इस विधि को और भी अनेक गंभीर मानसिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समाधान की कारगर विधि के रूप में परखा जा सकता है। आने वाले समय में मनोचिकित्सा के क्षेत्र में हिप्नोटिक रिग्रेशन को एक महत्त्वपूर्ण चिकित्सा-विधि के रूप में विकसित किया जा सकता है। ❑

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स चेन्निरर्थकं नीतः का नु हानिस्ततोऽधिका॥

जीवन बड़ी अमूल्य वस्तु है। इसका एक क्षण भी करोड़ों स्वर्णमुद्राएँ देने पर भी नहीं मिल सकता। ऐसा जीवन निरर्थक नष्ट हो जाए तो इससे बड़ी हानि क्या हो सकती है?

Scanned with CamScanner

वातावरण के विष को सोख लेते हैं पेड़-पौधे

वृक्षारोपण एक ऐसा तरीका है, जिसके माध्यम से हम प्रकृति और पर्यावरण को विकृत होने से बचाने के साथ ही इनका संरक्षण कर सकते हैं। वर्तमान समय में प्रकृति और पर्यावरण के उपद्रवों से हम सभी परिचित हैं। जहरीली हवाएँ, प्राकृतिक आपदाएँ, जलवायु में विषमता, मौसम में अनियमितता, रेगिस्तान होती जमीन आदि अनेकों ऐसे कारण हैं, जो हमें यह संकेत दे रहे हैं कि प्रकृति और पर्यावरण में लगातार जहर इस कदर घुलता जा रहा है कि जिसके दुष्प्रभाव से मानवीय जीवन भी अछूता नहीं रहा है। इसका सरल उपाय एक ही है कि इस विष को अवशोषित करने हेतु प्रकृति में हरियाली बढ़ाई जाए और इसलिए पौधारोपण करने व इनका संरक्षण करने के साथ इनकी भली प्रकार देख-भाल भी की जाए।

इस धरती में इनसानी कोशिका के पालन-पोषण के लिए ही प्रकृति ने पादप कोशिका का निर्माण किया। उद्देश्य यह ही था कि धरती पर पुष्पित-पल्लवित होने में दोनों एकदूसरे के हमसफर व सहयोगी बनें। इस सहजीवी संबंध की सहजता से दुनिया में खुशहाली और हरियाली बढ़ती गई, लेकिन कालांतर में इनसान ने लोभ की प्रवृत्ति के कारण हरियाली खतम करना शुरू कर दिया। औद्योगिक युग आते ही यह संबंध दरकने लगा; जिसके कारण जो पौधे इनसानी विषाक्त उत्सर्जन को अपने में समाहित कर लेते थे, उनकी संख्या घटती चली गई और पौधों से मिलने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ कम होते गए।

औद्योगिक क्रांति से पहले दुनिया के सभी देश अपनी अधिकांश जरूरतें जंगल से ही पूरी किया करते थे। भारत की जीडीपी में वनों का 0.9 फीसद योगदान है। इनके माध्यम से ईंधन के लिए सालाना 12.8 करोड़ टन लकड़ी प्राप्त होती है। हर साल इनसे 4.1 करोड़ टन टिंबर मिलता है। महुआ, शहद, चंदन, मशरूम, तेल व अन्य औषधीय पौधे भी जंगलों से ही प्राप्त होते हैं।

पेड़-पौधों से हमें कई तरह के लाभ मिलते हैं। जैसे— ये पेड़-पौधे खुद को कीटों से बचाने के लिए एक विशेष रसायन हवा में छोड़ते हैं, जिसमें एंटी बैक्टीरियल तत्त्व मौजूद होते हैं। श्वास के जरिए जब ये रसायन तत्त्व हमारे शरीर में जाते हैं तो हमारी रोगप्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है।

आज हमारे देश की 8 करोड़ हेक्टेयर भूमि हवा और पानी के कारण मिट्टी के कटाव से गुजर रही है और लगभग 50 फीसद भूमि को इसके कारण गंभीर नुकसान हो रहा है। इससे भूमि की उत्पादक क्षमता भी घट रही है। इस भूमि के कटाव की गंभीर समस्या को पेड़-पौधों को उपजाने के जरिए ही आसानी से बचाया जा सकता है।

पेड़-पौधे वातावरण से कार्बन-डाइऑक्साइड को सोखकर इसके बदले में ऑक्सीजन देते हैं। एक एकड़ में लगे पेड़ उतनी कार्बन सोखने में सक्षम हैं, जितना एक कार 26,000 मील चलने में उत्सर्जित करती है। साथ ही ये वातावरण में मौजूद हानिकारक गैसों को भी कैद कर लेते हैं।

इसके अलावा पेड़-पौधे धूप की अल्ट्रावॉयलेट किरणों के असर को 50 फीसद तक कम कर देते हैं। ये किरणें त्वचा के कैंसर के लिए जिम्मेदार होती हैं। ऐसे में घर के आस-पास बगीचे और पेड़ लगाने से लोग धूप की हानिकारक किरणों से सदा सुरक्षित रहते हैं। यदि घर के आस-पास पौधे लगाए जाएँ तो ये गरमियों के दौरान उस घर की एयर कण्डीशनिंग जरूरत को 50 फीसद तक कम कर देते हैं। घर के आस-पास पेड़-पौधे लगाने से बगीचे आदि से वाष्पीकरण बहुत कम होता है और भूमि व वातावरण में नमी भी बरकरार रहती है।

देखा जाए तो पेड़-पौधों का हर अंग प्रकृति को संतुलित व समन्वित करने में अपना योगदान देता है। जैसे— पेड़-पौधों की पत्तियाँ, टहनी व शाखाएँ वातावरण में मौजूद अनावश्यक शोर यानी ध्वनि-प्रदूषण को सोखती हैं। ये तेज बारिश का वेग धीमा कर मृदा के क्षरण को भी रोकती हैं।

Scanned with CamScanner

पेड़-पौधों की जड़ें, पत्तियाँ व तने आदि कीट-पतंगों, पक्षियों, जीव-जंतुओं व जानवरों को आवास प्रदान करते हैं। पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी के स्थिरीकरण द्वारा इसके क्षरण को भी रोकती हैं। इसकी पत्तियाँ वायु के हानिकारक तत्त्वों को छानने में सक्षम होती हैं। ये वातावरण को नम रखने में सहायक होती हैं और वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया के द्वारा वातावरण में प्राणवायु का उत्सर्जन करती हैं।

हमारे देश में लगभग 6.4 लाख गाँवों में से 2 लाख गाँव जंगलों में या इनके आस-पास बसते हैं। हमारे देश की लगभग 40 करोड़ आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वनों पर निर्भर है। इनकी आय में वन-उत्पादों का 40 से 60 फीसद योगदान है।

हमारे देश के वन व जंगल लगभग 27 करोड़ मवेशियों को चारा उपलब्ध कराते हैं; हालाँकि इससे लगभग 78 फीसद जंगलों को नुकसान पहुँच रहा है और लगभग 18 फीसद जंगल बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। ये हर साल जानवरों के लिए 74.1 करोड़ टन चारा उपलब्ध कराते हैं।

देखा जाए तो हमारे देश के लगभग तीस करोड़ आदिवासी एवं अन्य स्थानीय निवासी वनों पर अपनी आजीविका के लिए पूर्णतया निर्भर रहते हैं। पेड़-पौधों की महत्ता को जानकर ही हमारे समाज में पवित्र ग्रोव्स (वन क्षेत्र) की परिकल्पना विकसित हुई, जिसमें स्थानीय निवासियों की सहभागिता द्वारा अपने क्षेत्र में पवित्र वन क्षेत्र का संवर्द्धन एवं संरक्षण किया जाता है।

ऐसे क्षेत्रों में किसी भी प्रकार का आवागमन एवं प्राकृतिक संसाधनों का दोहन वर्जित रहता है। यह सब इसलिए संभव हो पाता है; क्योंकि स्थानीय लोगों को पेड़ों एवं वनों से होने वाले पर्यावरण संरक्षण का समुचित ज्ञान रहता है। यह परिकल्पना हमारे देश में चिरकाल से चली आ रही है।

देश के विभिन्न राज्यों में ये पवित्र वन-क्षेत्र अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं, परंतु सबकी परिकल्पना में बड़ी समानता है। इतना ही नहीं हिंदू धर्म में विभिन्न पेड़-पौधों; जैसे—पीपल, बरगद, आम, पलास, मंदार आदि की पूजा भी की जाती है, ताकि लोग इनके महत्त्व को समझें और इन्हें कम-से-कम नुकसान पहुँचाया जाए तथा इनके संवर्द्धन में समाज अपना विशेष योगदान देता रहे।

अगर हम पौधों का गहराई से विश्लेषण करें तो इसमें मुख्यतया दो श्रेणी के पौधे देखे जा सकते हैं। एक तो स्थानीय देशी पौधे और दूसरे बाहरी विदेशी पौधे। प्रायः हम विदेशी पौधों का महत्त्व व्यापारिक आवश्यकता हेतु बताते हैं; जैसे—यूकेलिप्टस, ल्यूसीना प्रासोपिस, एकेलिया ल्योकेसिफेला, एकेसिया मिरांजी, पाइनस पेंट्रला, केसिया साइमिया आदि। इनके अलावा दूसरे प्रकार के विदेशी पौधे वे हैं, जो अन्य किसी माध्यम से देश में आए हैं। इनमें मुख्यतया लैंटाना, गाजरघास, वन तुलसी आदि हैं, लेकिन विभिन्न अध्ययनों से यह देखा गया है कि इन विदेशी पौधों के रोपण की वजह से हमारी जैव-विविधता को बहुत हानि पहुँच रही है तथा स्थानीय लोगों की आजीविका में भी इन पौधों का सहयोग न के बराबर है।

इसके विपरीत स्थानीय बहुउद्देशीय पौधों का रोपण करने से जंगलों पर निर्भर रहने वाले निवासियों की आजीविका में सहयोग मिलने के अतिरिक्त पर्यावरण पर भी इनका अनुकूल प्रभाव देखने को मिलता है। इसके अलावा स्थानीय पौधे उस क्षेत्र विशेष की जलवायु के हिसाब से स्वतः विकसित होते हैं और ये अपने साथ उगने वाली अन्य पादप प्रजातियों की वृद्धि में भी कोई रुकावट नहीं डालते हैं; जिसके कारण स्थानीय जैव-विविधता का संवर्द्धन लगातार होता रहता है।

इन पौधों के रोपण से स्थानीय लोगों की दिन-प्रतिदिन की जरूरतें पूरी होती हैं; जैसे—मौसमी फल, चारापत्ती, जलाऊ लकड़ी, दवाइयाँ, तेल आदि। प्रख्यात पर्यावरणविद् एवं चिपको आंदोलन के प्रेरणास्रोत पद्मभूषण से विभूषित चंडी प्रसाद भट्ट एवं सुंदरलाल बहुगुणा भी इन स्थानीय पोधों के रोपण के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं और इनके महत्त्व को बताते हैं। इनके अनुसार पहाड़ी क्षेत्रों में प्रायः बुरांज, अखरोट, चेस्टनट, खुबानी, नाशपाती, पांगर, अंजीर आदि के वृक्ष ज्यादा-से-ज्यादा संख्या में रोपित होने चाहिए।

हमारे देश में पौधों का रोपण मुख्यतः दक्षिण-पश्चिम मानसून यानी जून से सितंबर के दौरान किया जाता है। कई बार पौधों की उपयोगिता का स्थानीय लोगों की आवश्यकता द्वारा सही मूल्यांकन न होने पर गलत पौधों का रोपण कर लिया जाता है, जो कि पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक होने के साथ-साथ स्थानीय निवासियों के लिए भी लाभकारी नहीं होता। इसलिए यह जरूरी है कि हम स्थानीय जलवायु

Scanned with CamScanner

एवं स्थानीय निवासियों की आवश्यकता के अनुरूप पौधारोपण करने हेतु पौधों का चयन करें, ताकि इन्हें पेड़-पौधों से प्रत्यक्ष लाभ मिले और इसके कारण वे इनका संरक्षण करने की आवश्यकता को भी महसूस करें।

हमारा देश ऐसा है, जिसकी जलवायु में विविधता है और ऐसे में यह बहुत जरूरी है कि क्षेत्र विशेष की जलवायु में पनपने वाले स्थानीय देशी पौधों की हमें पहचान हो और उसी दृष्टि से उनका वहाँ पर पौधारोपण हो। उदाहरण के लिए सेब भारत के सबसे ठंडे व उत्तरी भाग हिमाचल प्रदेश में पैदा होता है और यहाँ से यह पूरे देश में वितरित किया जाता है। सेब कभी भी गरम क्षेत्र में जैसे—राजस्थान में पैदा नहीं किया जा सकता। यदि किसी तरह से यह वहाँ उगाया भी जाए तो भी इसके फल में वह स्वाद नहीं होगा, जो कि हिमालय की तलहटी में बसे हुए हिमाचल प्रदेश में उगे हुए सेब का होता है। इसी तरह से यदि इमली व श्रीफल 'नारियल' की बात की जाए तो इसकी सबसे अधिक पैदावार दक्षिण भारत में होती है। अंगूर व संतरों के लिए महाराष्ट्र प्रसिद्ध है। केलों के लिए कोलकाता (कलकत्ता) प्रसिद्ध है। इस तरह हर क्षेत्र विशेष की जलवायु के हिसाब से प्रकृति ने वहाँ फल-फूल व औषधियों की अनुपम सौगात दी है और इसलिए पौधारोपण करते समय हमें इस बात का ध्यान रखते हुए पेड़-पौधे लगाने चाहिए।

इसी तरह मध्य भारत में स्थानीय लोगों की उपयोगिता के हिसाब से मंडुवा, चिरौंजी, तेंदूपत्ता, साल, सागौन, शीशम, नीम, इमली, आँवला, लसोरा, बेर, बेल, बाँस आदि का रोपण किया जा सकता है; क्योंकि ये स्थानीय होने की वजह से लोगों की आजीविका बनाए रखने में निरंतर उपयोगी हैं।

प्रकृति, वातावरण व जीव समुदाय को इतना सारा लाभ पहुँचाने वाले पेड़-पौधों की आज जो दयनीय स्थिति व दुर्दशा है, उसके कारण प्रकृति व पर्यावरण में असंतुलन व अव्यवस्था है; जिसे दूर करने के लिए पौधारोपण करने के साथ इनकी सुरक्षा व संरक्षण—दोनों जरूरी हैं। ❑

एक लड़का अपने घर जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि दो लड़के आपस में झगड़ रहे थे। उनमें से एक बलवान था और दूसरा कमजोर। बलवान लड़का कमजोर लड़के को लकड़ी से पीट रहा था। रास्ते चलने वाले लड़के ने बलवान लड़के के पास जाकर पूछा—"क्यों भाई! तुम इसको कितने बेंत लगाना चाहते हो?" किसी अपरिचित लड़के को बीच में पड़ते देख बलवान लड़के का क्रोध और तेज हो गया। उसने कहा—"क्यों तुम्हें क्या मतलब? तुम क्या कर लोगे?" राह चलता लड़का बोला—"भाई! मैं तुमसे अधिक बलवान तो हूँ नहीं, जो इस कमजोर को बचाने के लिए लड़ सकूँ, लेकिन इतना चाहता हूँ कि तुम इस कमजोर लड़के के शरीर पर जितने भी बेंत मारना चाहते हो; उससे आधे मेरी पीठ पर लगा दो। इस तरह इसका आधा कष्ट मैं बाँट लूँगा।" बलवान लड़का अपने हाथ की लकड़ी फेंककर चला गया। पिटने वाले लड़के की मुसीबत टल गई। वही राह चलता लड़का बड़ा होकर अँगरेजी का प्रसिद्ध कवि लार्ड बायरन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

Scanned with CamScanner

युगगीता –248

प्रवृत्ति का भेद बनाती है किसी को देव तो किसी को असुर

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभाग योग नामक सोलहवें अध्याय की छठी किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के पाँचवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि—हे पांडव! दैवी संपत्ति मुक्ति और आसुरी संपत्ति बंधन का कारण मानी गई है। तुम दैवी संपत्ति को प्राप्त हुए हो, इसलिए तुम कदापि शोक या चिंता न करो। इस सूत्र के माध्यम से श्रीभगवान अर्जुन को मानवीय जीवन के एक शाश्वत सत्य से परिचित कराते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य का जीवन दो तरह की संभावनाओं के केंद्र में स्थित है। यदि हमारा व्यक्तित्व पतन एवं पराभव की ओर जा निकले—हमारे विचार, संभावनाएँ, सोच, आचरण विकृत, दूषित एवं निकृष्ट होते चलें तो फिर भले से व्यक्ति की आकृति एवं संरचना न भी बदलें, पर तब भी चेतना एवं व्यक्तित्व इतने संकीर्ण व क्षुद्र हो जाते हैं कि व्यक्ति दुष्ट, पापी, अपराधी बन जाता है। दुर्गुण एवं दुराचाररूपी इन आसुरी लक्षणों से युक्त व्यक्ति अधोगामी सांसारिक बंधनों में फँसकर जीवन को एक त्रासदी में बदल देता है।

इसके विपरीत एक और भी संभावना है, जिसकी ओर श्रीभगवान इस श्लोक में संकेत करते हुए कहते हैं कि यदि व्यक्ति का चिंतन परिष्कृत हो जाए, भावनाएँ पवित्र हो जाएँ, व्यक्तित्व परिशोधित हो जाए तब भी व्यक्ति की आकृति या संरचना बदले-न-बदले, पर उसकी चेतना उच्चस्तरीय हो जाती है। ऐसा व्यक्ति फिर देवतुल्य हो जाता है और ऋषि, मुनि, संत, सुधारक, शहीद जैसे नामों से जाना व पुकारा जाता है। ऐसे व्यक्तित्व सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर सर्वत्र विद्यमान परमेश्वर से एकाकार हो जाते हैं। श्रीभगवान अर्जुन को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि चूँकि अर्जुन दैवी संपदा को लेकर पैदा हुए हैं, इसलिए उन्हें किसी भी प्रकार का शोक करने की आवश्यकता नहीं है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्तित्व भी कभी-कभी अपना जीवनोद्देश्य भूल बैठते हैं, जैसे हनुमान जी भूल बैठे थे और तब जांबवंत ने 'का चुप साधि रहा बलवाना' कहकर उन्हें उनका पथ याद दिलाया था। ठीक उसी तरह यहाँ भी श्रीभगवान अर्जुन को उसके अंदर निहित दैवी संभावना से परिचित कराते हैं।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥ 6॥

शब्दविग्रह—द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च, दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु।

शब्दार्थ—हे अर्जुन! (**पार्थ**), इस (**अस्मिन्**), लोक में (**लोके**), भूतों की सृष्टि यानी मनुष्य समुदाय (**भूतसर्गौ**), दो ही प्रकार का है(एक तो) (**द्वौ एव**), दैवी-प्रकृतिवाला (**दैवः**), और (दूसरा)(**च**), आसुरी-प्रकृति वाला (उनमें से)(**आसुरः**), दैवी-प्रकृतिवाला (तो)(**दैवः**), विस्तारपूर्वक (**विस्तरशः**), कहा गया (अब तू)(**प्रोक्तः**), आसुरी-प्रकृति वाले मनुष्य समुदाय को भी विस्तारपूर्वक (**आसुरम्**), मुझसे (**मे**), सुन (**शृणु**)।

अर्थात इस लोक में दो तरह के प्राणियों की सृष्टि है—दैवी और आसुरी। दैवी को तो मैंने विस्तार से कह दिया, अब हे पार्थ! तुम मुझसे आसुरी को सुनो। सर्ग का अर्थ होता है सृष्टि और भूतसर्ग का अर्थ है भूतों की सृष्टि। श्रीभगवान इस श्लोक में कह रहे हैं कि इस लोक में भूतों की सृष्टि यानी मनुष्य समुदाय दो ही मुख्य प्रकार के हैं—एक तो दैवी प्रकृति वाले और दूसरा आसुरी प्रकृति वाले। वे कहते हैं कि उनमें से दैवी प्रकृति के विषय में तो वे पहले से

Scanned with CamScanner

तीसरे श्लोक के मध्य विस्तारपूर्वक कह चुके हैं और अब वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्यों के विषय में बोल रहे हैं। यह कहने का एक अभिप्राय यह भी है कि वैसे तो मनुष्य समुदाय में अनेकों भेद हैं, परंतु प्रधानतया ये ही दो भेद हैं, ये ही दो विभाग हैं—जिनके विषय में वे इस अध्याय में चर्चा कर रहे हैं।

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि दैवी और आसुरी—ये दोनों प्रवृत्तियाँ हैं, व्यक्ति नहीं। देव एवं असुर के मध्य का भेद प्रवृत्ति का भेद है और यह मात्र मनुष्य जाति तक ही सीमित नहीं है। अन्य प्राणियों में भी कुछ सात्त्विक प्रवृत्ति के प्राणी हैं तो कुछ तामसिक। गाय की प्रवृत्ति अलग है, सिंह की अलग। यहाँ तक कि पौधों-पादपों में भी ऐसे ही भेद देखने को मिल जाते हैं। तुलसी की प्रवृत्ति अलग है, लहसुन की अलग।

यहाँ श्रीभगवान जब दैवी और आसुरी शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उसके पीछे उनकी मंशा उसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करने की है, जो इन दोनों के मध्य का मूल भेद है। सामान्य व्यक्ति में ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ साथ-साथ उपस्थित रहती हैं और कभी किसी का तो कभी किसी का प्रभुत्व या आधिपत्य उसके व्यक्तित्व पर बना रहता है।

इसीलिए श्रीभगवान यहाँ इन दोनों शब्दों का प्रयोग प्रवृत्ति के संदर्भ में करते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि एक ही व्यक्तित्व में ये दोनों संभावनाएँ एक साथ विद्यमान हैं। सात्त्विक व सदाचारयुक्त गुण मनुष्य के भीतर उपस्थित देवत्व का जागरण करते हैं और उसकी मुक्ति का आधार बनते हैं तो वहीं तामसिक जड़ता की ओर ले जाने वाले दुर्गुण उसको बंधन में डालकर आसुरी व्यक्तित्व का स्वामी बनाते हैं।

इस संदर्भ में एक प्रेरणास्पद आख्यान पुराणों में आता है। कथा आती है कि एक बार देवर्षि नारद अपनी एक जिज्ञासा लेकर परमपिता परमेश्वर के पास पहुँचे एवं उनसे बोले—"प्रभु! आपने देवताओं एवं असुरों के मध्य में भेद क्यों रखा है?" परमपिता मुस्कराए एवं नारद से बोले—"देवर्षि! भेद कैसा?" देवर्षि नारद बोले—"भगवन्! देवता और असुर—ये दोनों ही आपकी संतान हैं। आपको दोनों को ही समान अधिकार देना चाहिए था, फिर आपने एक को स्वर्ग का साम्राज्य दिया हुआ है और दूसरों को नरक में डाला हुआ है, ऐसा क्यों?"

देवर्षि नारद आगे बोले—"देवता स्वर्ग की सारी सुविधाएँ, सारा ऐश्वर्य भोगते हैं एवं कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि से लेकर उच्चैःश्रवा, ऐरावत जैसे तमाम रत्नों का अधिकार उनको है, वे यज्ञ के भोग के भी अधिकारी बनते हैं; जबकि असुर—नरक में गिरकर अंधकार को भोगते हैं। वे सभी के लांछन के भी अधिकारी बनते हैं। ये दोनों ही आपकी संतानें हैं, फिर दोनों के मध्य यह असमानता, यह भेदभाव क्यों?"

परमपिता बोले—"नारद! भेद दोनों के मध्य की प्रवृत्ति का है, किसी अन्य गुण का नहीं। यदि देवत्व वंशानुगत होता तो हम बलि को, प्रह्लाद को, विरोचन को, देवतुल्य क्यों मानते—इन्होंने तो असुर-कुल में जन्म लिया था; जबकि रावण ऋषिपुत्र होने पर भी राक्षस कहलाया। यदि तुम दोनों के मध्य की प्रवृत्ति का अंतर जानना चाहो तो मैं सायंकाल तुम्हें ऐसा प्रत्यक्ष दिखाता हूँ।"

देवर्षि नारद के हामी भरने पर परमेश्वर ने उनसे कहा कि वे सृष्टि में सभी तक यह संदेश पहुँचा दें कि आज हमने एक भोज का आयोजन किया है। सभी समय से पहुँच जाएँ। असुर समय से पहले ही आ गए। उन्हें नाना प्रकार के व्यंजन परोस दिए गए। वे भोजन प्रारंभ करने ही वाले थे कि परमेश्वर वहाँ पहुँचे और बोले—"भोजन आप सबको मिलेगा, मात्र एक शर्त है। शर्त यह है कि बिना कोहनी को मोड़े भोजन करना है। भोजन आप चाहे जितना भी करें, पर आपकी कोहनी नहीं मुड़नी चाहिए।"

असुर यह शर्त सुनकर बड़े असमंजस में पड़े। उन्होंने बिना कोहनी मोड़े भोजन करने का प्रयास किया, पर वे असफल ही रहे। सारा भोजन फैल गया और वे भूखे उठे। सब-के-सब परमेश्वर को कोस रहे थे कि ऐसी विचित्र शर्त क्यों रखी? भूखा ही रखना था तो वैसे ही बता देते। इतनी बेढब शर्त की क्या जरूरत थी?

अब बारी देवताओं की थी। भोजन उनको भी परोसा गया। भोजन प्रारंभ होता, उससे पहले परमेश्वर वहाँ पहुँचे और वही शर्त देवताओं के सम्मुख भी रखी। शर्त सुनते ही देवता समझ गए कि अपना भोजन मिल-बाँट करके खाना है। प्रत्येक देवता अपने निकट के देवता के समीप बैठ गया। हरेक ने बिना कोहनी को मोड़े अपने बाईं ओर बैठे देवता का पेट भर दिया, उसे भोजन करा दिया।

Scanned with CamScanner

यह घटनाक्रम देवर्षि नारद को दिखाते हुए परमेश्वर बोले—"आपने देखा देवर्षि! देवताओं और असुरों में भेद उनकी प्रवृत्ति के कारण है, किसी अन्य कारण से नहीं। आसुरी प्रवृत्ति के व्यक्ति बाँटना नहीं, बटोरना जानते हैं; जबकि दैवी प्रवृत्ति के व्यक्ति बटोरना नहीं, बाँटना जानते हैं।" प्रवृत्तियों के इसी भेद की ओर इशारा करते हुए श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि दैवी प्रवृत्ति के लोगों के विषय में मैंने विस्तारपूर्वक कहा। अब आगे के सूत्र में वे आसुरी प्रवृत्ति के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की दुर्बलताएँ बताएँगे। (क्रमशः)

राजा कीर्ति सिंह जंगल में आखेट हेतु निकले। जंगल में उन्हें कुछ पेड़ मिले, जहाँ निशाने के गोले के बीचोबीच तीर गड़ा हुआ था। दस-बारह ऐसे ही तीर देखने के बाद कीर्ति सिंह के मन में उत्सुकता हुई कि उस व्यक्ति से मिला जाए, जो इतना श्रेष्ठ धनुर्धर है कि उसका निशाना हमेशा लक्ष्य के मध्य में ही लगता है।

कुछ दूरी पर उन्हें एक व्यक्ति मिला, जो गाएँ चरा रहा था। उन्होंने उससे प्रश्न किया कि वो तीर किसके हैं? गाएँ चराते व्यक्ति ने उत्तर दिया कि वह ही वह धनुर्धर है, जिसके तीर वहाँ पेड़ों में लगे हुए हैं। राजा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने बिना उसके कथन की जाँच-पड़ताल किए उसे अपने साथ राज्य लौटने को कहा और वहाँ पहुँचकर उसे राज्य का सेनापति बनाने की घोषणा कर दी।

राजा की आज्ञा से राज्य भर में मुनादी पिटवा दी गई कि राज्य के नए सेनापति अपनी तीरंदाजी का प्रदर्शन करेंगे। हजारों लोग प्रदर्शन देखने के लिए एकत्रित भी हो गए। जब उस व्यक्ति से प्रदर्शन दिखाने को बोला गया तो उसे धनुष पर तीर चढ़ाना भी नहीं आता था। अब राजा के क्रोध का ठिकाना न था। उसने उस व्यक्ति से पूछा—"क्यों तुम तो कह रहे थे कि वो तीर तुम्हारे ही हैं, फिर यह झूठ क्यों बोला?"

वह व्यक्ति बोला—"महाराज! वो तीर तो मेरे ही थे, पर आपने यह पूछा ही नहीं कि मैंने निशाना कैसे लगाया? मैं तो केवल पेड़ों पर तीर गाड़ देता था और उसके चारों ओर गोला खींच देता था। धनुर्धरी तो मैंने कभी सीखी ही नहीं।" सत्यता पता चलने पर राजा के पास अपनी भूल पर पछताने के अतिरिक्त कोई और मार्ग न था। बिना सही बात जाने, कार्य करने वाले सदा हँसी के पात्र बनते हैं।

Scanned with CamScanner

मानसिक स्वास्थ्य का भी रखें ध्यान

जीवन की भाग-दौड़ में सामान्यतया व्यक्ति इस कदर उलझ जाता है कि मन की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। जब सामाजिक जीवन में कोई भारी झटका लगता है या जीवन मनोरोगों से आक्रांत हो जाता है तथा किसी मनोचिकित्सक के चक्कर लगाने पड़ते हैं तो लगता है कि जीवन किसी गलत दिशा में बह गया और अपना मानसिक स्वास्थ्य संतुलन का क्षेत्र अनछुआ ही रह गया। ऐसे में जीवन की रीति-नीति को पुनर्निर्धारित करने की आवश्यकता अनुभव होती है।

जीवन को सही ढंग से जीने में व्यक्ति में खिलाड़ी भाव का रहना महत्त्वपूर्ण रहता है। खेल में व्यक्ति हार-जीत दोनों को अधिक गंभीरता से नहीं लेता और दोनों के बीच आगे बढ़ता हुआ अपना कौशल निखारता है। इसी तरह से जीवन को एक खेल भाव से लें व इसके उतार-चढ़ाव से आवश्यक सबक लेते हुए आगे बढ़ें। हर परिस्थिति सामयिक होती है, जिसके नश्वरस्वरूप को इतनी गंभीरता से न लें कि जीवन का अनश्वर तत्त्व ही हाथ से छूट जाए। चिंता करनी ही है तो उस अनश्वर तत्त्व की करें, जो सुख-शांति एवं मानसिक संतुलन का सच्चा आधार रहता है, जिसके साये में ऐसे कितने खेल बनते-बिगड़ते रहते हैं।

खेल में व्यक्ति की प्रतिक्रिया सरल, सहज एवं स्वस्थ होती है, लेकिन जीवन को अति गंभीरता से लेने पर स्थिति बदल जाती है। अत: जीवन में किसी भी परिस्थिति में आवेश-आवेग के वशीभूत होकर ऐसी प्रतिक्रिया न दें कि स्वयं का तमाशा बन जाए और बाद में पश्चात्ताप करना पड़े। हर हाल में अपने विवेक का दामन थामे रहें, जिससे की कोई भी परिस्थिति मानसिक असंतुलन न पैदा कर सके।

इसके लिए उस परमपिता परमात्मा को याद करें। उसकी सृष्टि-लीला का ध्यान करें, जिसमें हर पल असंख्य जीवन प्रकट हो रहे हैं और न जाने कितने कालकवलित। अपना भी खेल अधिक देर का नहीं, वरन भूमिका सामयिक ही है। फिर वह तो सबका माता-पिता है। उसे अपनी सभी संतानों का ध्यान रखना है। सृष्टि उसके विधान के हिसाब से चलती है। सब कुछ हमारी इच्छा के अनुकूल हमारे इशारे पर हो, यह कैसे संभव है। इस तरह की सोच व समझ व्यक्ति को विनम्र, धीर एवं शालीन बनाती है और मानसिक स्वास्थ्य-संतुलन का पुख्ता आधार तैयार करती है।

ऐसे में सब कुछ मनोनुकूल न होने पर निराशा नहीं होती और फिर जीवन विचारशीलता एवं सृजनशीलता के लिए हजारों विकल्प प्रस्तुत करता है। वह इन पर विचार करता है। जब जीवन संभावनाओं से भरा प्रतीत होता है तो किसी हार, विफलता या हानि पर अधिक निराश होने की आवश्यकता नहीं रह जाती। निराशा वास्तव में एक तरह की अपंगता है। यह एक कोरा मानसिक भ्रम है, जो कुकल्पना से पैदा होती है।

इसका आधार अपने जीवन की संभावनाओं पर विश्वास का अभाव रहता है। इससे कोई काम बनता नहीं, बल्कि कार्य बिगड़ता ही है। समाज में भी अपनी अनगढ़ता व अपरिपक्वता ही साबित होती है, इसलिए ईश्वर का अविनाशी अंश होने के नाते अपनी असीम संभावनाओं पर विश्वास रखें। अपनी रुचि, क्षमता के अनुरूप इनको चरितार्थ करने में अपने समय, मनोयोग व ऊर्जा का नियोजन करें। ऐसा करने पर मनोनुकूल संकल्प सृष्टि धीरे-धीरे रूपाकार लेने लगेगी।

अपना श्रेष्ठतम प्रयास करें और शेष ईश्वर पर छोड़ दें तब जो होगा, अच्छा ही होगा। वे सबके शुभचिंतक, अंतर्यामी प्रभु हमारा भला ही करेंगे, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि हाथ-पर-हाथ धरकर निठल्ला बैठा जाए। अपना पुरुषार्थ अपनी जगह है—इसका कोई विकल्प नहीं। अपनी मनचाही संकल्प सृष्टि को रचने में कोई कसर न छोड़ें। ईश्वर की कृपा व्यक्ति के पुरुषार्थ के चरम पर ही कार्य करती है और वह पुरुषार्थी का ही साथ देती है। इसको ध्यान में रखते हुए अथक श्रम करें। आलस्य, प्रमाद और कामचोरी को अपना दुश्मन मानें और इन्हें पास न फटकने दें।

साथ ही जीवन में प्रसन्न रहने का अभ्यास करें। आत्मविश्वास को जीवन का अंग बनाएँ। अपने मनोबल

Scanned with CamScanner

को बढ़ाएँ। ऐसे कार्य, विचार एवं अभ्यास को करने से बचें, जो इनका क्षरण करते हों। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे खोई मुस्कान चेहरे पर चमकने लगेगी। अपने जीवन में इसके जादुई प्रभाव को देख पाएँगे। यदि जीवन परिस्थितियों के जटिल चक्रव्यूह में उलझा हो तो यह सब कठिन हो सकता है, किंतु क्रमशः अभ्यास से अंदर-बाहर छोटी-छोटी विजय हासिल करते हुए जीवन का नवीनीकरण होने लगेगा।

छोटे-छोटे सफल कार्य विश्वास को बढ़ाते हैं। हर सफलता के साथ मनोबल बढ़ता है और जीवन में प्रमुदता सहज ही अंदर से विकसित होने लगती है, जिसे अभ्यास के साथ और अधिक निखारा जा सकता है। वस्तुतः जीवन का राजमार्ग श्रम, ईमानदारी, सद्भाव व उदारता के साथ तय होता है। इसमें तुरत-फुरत किसी भी तरह से बिना कीमत चुकाए सफलता—बुलंदी की चाह से बचें, जो शॉर्टकट अपनाने के लिए बाध्य करती है और दीर्घ अंतराल में घाटे का ही सौदा सिद्ध होती है। तुरत-फुरत बड़ा बनने की चाह, धनकुबेर बनने की हवस व्यक्ति से भौंड़ा प्रदर्शन करवाती है और तरह-तरह के स्वांग रचने के लिए बाध्य करती है और सस्ती वाहवाही के नाटक कराती है।

ऐसे में चाटुकारों की सस्ती वाहवाही भले ही मिल जाए, लेकिन विवेकवानों की नजर में ये बचकानी हरकतें व्यक्ति को हँसी का ही पात्र बनाती हैं। किसी भी तरह छल-छद्म और रौब-दाब जमाकर अपना हित सिद्ध करने की रीति-नीति बन जाती है, जिसके विफल होने पर अंततः खीज और कुंठा ही हाथ लगते हैं व साथ ही समाज की घृणा का बोझ भी ऐसे में लदता जाता है। अंततः यह पतन का मार्ग साबित होता है और ऐसे में व्यक्ति एक आशंकित-आतंकित जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है।

बाहरी चकाचौंध, रौब-दाब, सुविधा-विलासिता के बावजूद ऐसी मरघट-सी मनःस्थिति को सफल जीवन तो नहीं ही कहा जा सकता और इसीलिए ऐसे व्यवहार एवं सोच को गलत ठहराया गया है; क्योंकि इनके कारण मन अशांत रहता है। व्यक्ति हैरान-परेशान विक्षिप्त अवस्था की ओर बढ़ता है और कोई ठोस उपलब्धि हाथ लगती नहीं; बल्कि चिंता, भय, क्रोध, आवेश, आशंका, निराशा, हीनता, दीनता ही पल्ले पड़ते हैं और मनःस्थिति घोर असंतुलन की स्थिति में डाँवाडोल बनी रहती है तथा चित्त मनोविकारों का अड्डा बन जाता है।

इनकी जड़ में कुकल्पना और नकारात्मक सोच को ही सक्रिय देखा जा सकता है। ऐसे में नकारात्मक सोच हावी रहती है। दूसरों का दोषदर्शन स्वभाव का अंग बन जाता है और हर बुरी परिस्थिति या जीवन की असफलता के लिए दूसरों पर दोषारोपण सरल प्रतीत होता है। व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी लेने से बचता है, लेकिन जीवन के सच से व्यक्ति कब तक मुँह छिपा सकता है। जब सत्य का सामना करना पड़ता है तो अग्निपरीक्षा में सारी कुटिलता एवं छल-छद्म तार-तार हो जाते हैं।

ऐसे में व्यक्ति के हाथ में शर्मिंदगी, अपमान, ग्लानि के अतिरिक्त कुछ शेष बचता नहीं। जनता के सामने व्यक्तित्व की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न अलग से लग जाता है, जिससे लोक सम्मान भी हाथ से निकलता दिखता है और दैवी कृपा

सद्विचारों से लाभ उठाने की इच्छा रखने वालों के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वे इन्हें कार्य रूप में परिणत करें।

तो ऐसे में दूर की कौड़ी साबित हो जाती है। इस स्वनिर्मित मकड़जाल से बाहर निकलने का एक ही राजमार्ग है और वह यह है कि मन-मस्तिष्क को सदैव सकारात्मक विचारों से भरा रखें और स्वयं को रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रखें। अपने इष्ट-आराध्य-जीवनध्येय का निरंतर सुमिरन करते रहें।

साथ ही जीवन को हर पल उच्चतम मानदंडों पर कसते रहें। अपने पावन संकल्प के साथ जीवन में अच्छाई और भलाई की छोटी-छोटी सफलताओं को हासिल करते हुए आगे बढ़ें। बुराई के प्रति उपेक्षा का भाव रखें और कीचड़ की धुलाई कीचड़ से न करने की समझदारी दिखाएँ। इस तरह व्यक्तित्व की पुनर्रचना की प्रक्रिया गति पकड़ेगी, मानसिक आवेगों से बचाव होता चलेगा, अपना मानसिक संतुलन बना रहेगा तथा जीवन निर्धारित लक्ष्य की ओर शांति-संतुलन व आनंद के साथ सतत आगे बढ़ता रहेगा। ❑

Scanned with CamScanner

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी –1

व्यक्तित्व का परिष्कार

(प्रथम किस्त)

आध्यात्मिक प्रयासों की सार्थकता व्यक्तित्व के परिशोधन से तय होती है। बिना व्यक्तित्व का परिशोधन किए, इनसान के व्यक्तित्व का कोई मूल्य नहीं होता। परमपूज्य गुरुदेव अपने इस विशिष्ट उद्‌बोधन में इसी शाश्वत सत्य की ओर इशारा करते हैं। वे कहते हैं कि जिस तरह से खदान से निकलने वाला लोहा बहुत मूल्य का नहीं होता, परंतु उसको भट्‌ठी में डाल देने के बाद उसका मूल्य बढ़ जाता है; उसी तरह से इनसान भी कुसंस्कारों का परिशोधन करके अपने व्यक्तित्व की गुणवत्ता को बढ़ा सकता है। परिशोधन की इस प्रक्रिया का नाम तप है। इसी के माध्यम से व्यक्तित्व का परिष्कार संभव हो पाता है। युगऋषि कहते हैं कि परिष्कार की इस प्रक्रिया का मूल आधार यह है कि हम नर-पशु की तरह से न जिएँ और अपने बहिरंग ही नहीं, बल्कि अंतरंग जीवन का भी परिष्कार करें। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

व्यक्तित्व का परिशोधन

देवियो, भाइयो! खदान से जब लोहा निकलता है, तो खालिस लोहा नहीं होता। उसमें मिट्‌टी मिली होती है। मिट्‌टी मिले लोहे को जमीन में से खोदते हैं। खोदने के बाद में फैक्टरी में भेजते हैं, तब उसे भट्‌ठियों के भीतर गलाया जाता है। गलने से मिट्‌टी अलग हो जाती है और लोहा अलग हो जाता है। इसके बाद में उस लोहे का धीरे-धीरे संस्कार करना शुरू करते हैं। पहले कास्ट आयरन होता है, जिसको 'ढलवाँ लोहा' कहते हैं। उसके बाद में और सफाई होती है और अच्छा लोहा बन जाता है, जो गर्डर बनाने, सरिया बनाने, छड़ें बनाने के काम आता है। इसे और अधिक साफ करते हैं, तो वह फौलाद बन जाता है, जो बंदूकों के रिंग ढालने के काम आता है और अधिक सफाई करते हैं, तो स्टेनलेस स्टील बन जाता है और इससे भी ज्यादा साफ करते हैं, तो लोहे की भस्म बन जाती है और ऐसा लोहा सबसे बढ़िया क्वालिटी का, किस्म का होता है। लोहा वही होता है, जो मिट्‌टी में मिला लोहा होता है, लेकिन संस्कारित होने पर उत्तम क्वालिटी का बन जाता है।

मित्रो! मैं क्या कह रहा था? यह कह रहा था कि आदमी का व्यक्तित्व मिट्‌टी में मिले लोहे के तरीके से है। उसमें या उसके भीतर बहुत से कुसंस्कार जमे पड़े हैं। ऐसे कुसंस्कार जमे पड़े हैं कि यदि उन कुसंस्कारों को ज्यों-का-त्यों बनाकर रखा जाए, तो आदमी-को-आदमी कहलाने का श्रेय प्राप्त नहीं हो सकता। आदमी-को-आदमी कहलाने का श्रेय प्राप्त हो सके, इसके लिए जरूरी है कि उसके भीतर जो मलिनताएँ हैं, जो जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कारों से जम करके आ रही हैं, उन्हें साफ किया जाए। उनका शोधन किया जाए लोहे के तरीके से।

क्या है तप?

यह कैसे हो सकता है? इसका एक तरीका है, जिसका नाम है—तप। हमारे भीतर दो चीजें हैं। एक चीज जो हमारे भीतर है, वह है—चेतना और एक चीज है—हमारे भीतरी पदार्थ। पदार्थों से हमारा शरीर बना है। चेतना से हमारा प्राण बना है। पंचतत्त्व—ये जड़ हैं। इनसे हमारा जड़ शरीर बना है। शरीर किससे बना है? पंचतत्त्वों से बना है अर्थात जड़ पदार्थों से बना हुआ है। हमारे भीतर एक और भी सत्ता काम करती है, जिसको हम आत्मा कहते हैं। आत्मा किससे बनी है? आत्मा बेटे! श्वास से—प्राणों से बनी है। पाँच प्राणों से हमारा जीवन बना है। पाँच तत्त्वों से हमारा शरीर बना है। दिव्य चेतना का समन्वय—उसी का नाम है व्यक्तित्व।

Scanned with CamScanner

मित्रो! हम देव चेतना का समन्वय न करें, तो व्यक्ति नहीं रह सकता। फिर क्या रह जाएगा? फिर न जाने क्या हो जाएगा? अगर हमारे भीतर से प्राण निकल जाए, तो क्या हो जाएगा? फिर बेटे! हम लाश हो जाएँगे। हमारा नाम क्या हो गया? लाश। फिर मनुष्य भी—मनुष्य नहीं रह जाता। अगर मनुष्य के भीतर से प्राण निकल गया, तो फिर वह मनुष्य कैसे हो सकता है? और हमारे भीतर से शरीर निकल जाए, तो क्या हो जाएगा? तो फिर हम हो जाएँगे—भूत।

भूत कैसा होता है? भूत ऐसा होता है, जैसे मनुष्य। फरक क्या होता है? फरक यह होता है कि उसके पास शरीर नहीं होता। शरीर न होने की वजह से इच्छाएँ भी होती हैं, कामनाएँ भी होती हैं, विचारणाएँ भी होती हैं। सब चीजें वही होती हैं, केवल शरीर नहीं होता। शरीर न होने की वजह से आदमी भूत हो जाता है और प्राण न होने की वजह से आदमी लाश हो जाता है। लाश भी बेकार है और भूत भी बेकार है। दोनों में जब हम ठीक से समन्वय—संतुलन बना देते हैं, तो एक व्यक्तित्व बनता है, एक मनुष्य बनता है और एक आदमी की सत्ता बनती है।

व्यक्तित्व का परिष्कार जरूरी

मित्रो! हमारे भीतर दो चीजें हैं और दोनों चीजों को परिष्कृत करने के लिए दोनों चीजों को बेहतरीन बनाने की जरूरत है। अगर हम दोनों को बेहतरीन नहीं बनाएँगे, तो हमारा घटियापन बना रहेगा। अगर हमारे भीतर घटियापन बना रहा, तो व्यक्तिगत जीवन में हम दुःख पाएँगे और बहिरंग जीवन में आप दुःख पाएँगे। जो कोई भी हमारे संपर्क में आएगा, वह दुःखी होता चला जाएगा। अगर हमारी धर्मपत्नी, हमारे संपर्क में आएगी, तो गालियाँ देगी और दुःख पाएगी। अगर माताजी हमारे संपर्क में आएँगी, तो माताजी भी दुःख पाएँगी, गालियाँ देंगी। बेटा अगर हमारे संपर्क में आएगा, तो बेटा दुःख पाएगा और गालियाँ देगा; क्योंकि हमारा व्यक्तित्व घटिया है। घटिया चीजें जिस किसी को छुएँगी, तो घटियापन फैलाएँगी। टी०बी० का मरीज, कैंसर का मरीज, छूत रोग का मरीज, कॉलेरा का मरीज जिस किसी को छुएगा, बीमारी फैलाएगा। छूने के साथ गंदगी भी रहती है। गंदा आदमी जहाँ-कहीं भी जाएगा, जिस किसी के पास रहेगा, वहाँ हैरानी पैदा करेगा। परेशानी पैदा करेगा, समस्याएँ पैदा करेगा, कठिनाइयाँ पैदा करेगा।

इसलिए मित्रो! मैं यह कह रहा था कि आदमी का घटियापन जब हमारे बहिरंग जीवन में दिखाई पड़ता है, तो दरिद्रता के रूप में दिखाई पड़ता है। दरिद्र आदमी कौन हो सकता है? दरिद्र आदमी वह हो सकता है, जिसका व्यक्तित्व घटिया हो, और घिनौना आदमी कौन होना चाहिए? जिसका व्यक्तित्व घटिया हो, वह आदमी। जिस आदमी के चेहरे पर खीज और नाराजगी दिखाई देती हो, ऐसे व्यक्ति को आप क्या कहेंगे? बेटे! मैं इसे घटिया आदमी कहूँगा; क्योंकि इसके चेहरे पर खीज, नाराजगी, झल्लाहट, नाखुशी, असंतोष छाया रहता है। बस, यही घटिया आदमी जहाँ कहीं भी जाता है, लोग कहते हैं कि भगाओ इसे। यह अभागा जब तक हमारे यहाँ रहेगा, तब तक हमारे प्राण खाएगा। हमको दुःख देगा, हमको कष्ट देगा। जो आदमी भीतर से जलता रहता है, घुलता रहता है। कष्ट और चिंता में डूबा रहता है, उसे घटिया आदमी कहेंगे। ये तीनों आदमी बहिरंग जीवन में घटिया हैं।

मित्रो! अभी मैं आपसे बहिरंग जीवन की बात कह रहा हूँ। अंतरंग जीवन अलग है। बहिरंग जीवन से क्या मतलब है? हमारे जीवन का एक स्वरूप वह है, जो दिखाई पड़ता है। वह बहिरंग जीवन है। हमारे जीवन का एक स्वरूप वह है, जो दिखाई नहीं पड़ता। आप उसे आँखों से नहीं देख सकते। यह हमारे भीतरवाला रूप है। इसे अंतरंग जीवन कहते हैं। बहिरंग जीवन में हमको चिंता छाई रहती है। आपको कुछ मालूम है? हमको तो नहीं मालूम। हमारी आँखों में दरद होता है और हमारी आँखें लाल रहती हैं। इसलिए आपको मालूम है कि आँखों में क्या खराबी है? हमारे दिमाग में चिंता छाई रहती है, आपको मालूम है? नहीं, कोई जानकारी नहीं है। हमारे भीतर ईर्ष्या और डाह की आग जलती रहती है। क्या आपने उसे देखा है? इसे आप नहीं देख सकते। हमारे भीतर महान बैठा है और हमारे जीवन में महान काम करता है। आप इसे नहीं जान सकते; क्योंकि ये चीजें आंतरिक हैं।

कुसंस्कारों का परिशोधन करें

मित्रो! अभी मैं आपको बहिरंग जीवन की बात बताऊँगा, फिर अंतरंग की ओर लेकर चलूँगा। बहिरंग जीवन में क्या करना पड़ता है? हमारे जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कारों को, आदतों को, जो कहाँ से चली आई हैं?

Scanned with CamScanner

अमीबा से चली आई हैं। अमीबा छोटे वाले कीड़े थे, तब से लेकर के संस्कारों की छाप हमारे ऊपर पड़ी हुई चली आई है। अभी कुछ विकास का क्रम चला तो है। हमने एक-एक करके अच्छी बातें सीखीं तो हैं, पर उन बुरी बातों को, सबको भुला सकने में समर्थ न हो सके। इसलिए अभी भी हमारे भीतर कुसंस्कार बहुत हैं। कुसंस्कारों की छाया हमारे भीतर बहुत है। कौन-कौन से कुसंस्कारों की छाया है? बेटे! बहुत से कुसंस्कार हमारे ऊपर छाए हुए हैं, जिनको परिष्कृत करने की जरूरत है, जिनको तपाने की जरूरत है, गलाने की जरूरत है और नए ढालने की जरूरत है। जो हमारे व्यक्तित्व के साथ-साथ मिट्टी में मिले हुए हैं। मिट्टी खराब होती है? मिट्टी खराब नहीं होती, पर बेटे, लोहे के साथ में मिट्टी है और लोहे को बेहतरीन बनाना है, तो हमें मिट्टी को हटाना ही पड़ेगा। नहीं साहब! मिट्टी को तो नेचर ने मिलाकर रखा है। लेकिन वह लोहा किसी के काम नहीं आ सकता। वह लोहा औजार बनाने के काम नहीं आ सकता। कौन-सा? जो प्राकृतिक रूप से जमीन में से निकला था, वह हमारे किसी काम का नहीं है। उसको फौलाद के तरीके से परिष्कृत बनाना पड़ेगा।

मित्रो! परिष्कृत लोहे से ही तलवार बना सकते हैं, बंदूक की नली ढाल सकते हैं। नहीं साहब! कच्चे लोहे से ढाल लीजिए। नहीं, कच्चे लोहे से नहीं ढलेगी और ढाल भी ली, तो जब इसमें बारूद रखा जाएगा, तो धमाके की वजह से फटकर चूर-चूर हो जाएगी और चलाने वाले का भी सफाया करेगी। आस-पास खड़े लोगों को मारकर डाल देगी। हम तो निशाना लगा लेते हैं। अरे बाबा! निशाने की बात चल रही है या चलाने वाले की बात चल रही है। लक्ष्य को कैसे पूरा करेगी? यह तो अपने आप को ही सफाया कर देगी। इसलिए जीवन को परिष्कृत करना आवश्यक है। हमारे जीवन में कौन-कौन से कुसंस्कार हैं?

पहला कुसंस्कार—कामवासना

एक कुसंस्कार यह है कि जब हम कुत्ते थे, तो हमको कोई तमीज नहीं थी कि माँ किसे कहते हैं, बेटी किसे कहते हैं, बहन किसे कहते हैं? कोई रिश्तेदार नहीं मानते। बेटी है तो क्या, माँ है तो क्या? मादा-मादा सब एक-सी हैं? नहीं साहब! फरक कीजिए। नहीं, हम जानवर हैं, हम क्या फरक कर सकते हैं? तब हमें कोई तमीज नहीं थी। वे कुसंस्कार अभी भी हमारे भीतर विद्यमान हैं।

मित्रो! समाज के बंधन तो ऐसे हैं, जो हमको हर चीज के लिए छूट नहीं दे सकते? समाज की मर्यादा, समाज के कानून ऐसे हैं, जो हमारे बाल नोंच सकते हैं? वे हमको मजबूर कर सकते हैं कि आपको कायदे में रहना चाहिए। इसलिए दबाव से तो हम डरते हैं, लेकिन हमारे भीतर का कुत्ता ज्यों-का-त्यों जिंदा है और हमारा कुत्ता मौके की तलाश करता रहता है कि कहीं हमको मौका

तालाब में कमल और तट पर गुलाब का फूल खिला हुआ था। गुलाब अकड़कर बोला—"कमल जी! आप दिखने में तो इतने विशालकाय हैं, पर सुगंध इतनी कम क्यों देते हैं? मुझे देखिए मेरा शरीर इतना विशालकाय भी नहीं है, पर मेरी सुगंध तो दूर-दूर तक फैलती है।"

कमल बोला—"भाई गुलाब! आप सुगंध बिखेरते हो और मैं सौंदर्य। हम दोनों मिलकर जो काम कर रहे हैं वो अकेले नहीं किया जा सकता था।" जीवन में उन्नति सहयोग और सहकार से ही संभव है, एकाकी अहंकार से नहीं।

मिले, तो हम जो पहले जीवन में मनमरजी से स्वच्छंद रहते थे, वैसे रहें।

बेटे! इस कुसंस्कार को सफाया करने की जरूरत है। अगर न करें तो? तो बेटे! आप उसी पुराने जीवन में बने रहेंगे। आप नर-पशु बने रहेंगे। फिर आप क्या दे सकते हैं? यदि आप पिछड़ी जिंदगी जी सकते हैं, तो आप नर-पिशाच बन सकते हैं। नर-पिशाच कैसे होते हैं? नर-पिशाच ऐसे होते हैं, जिनको कि दूसरों के दु:ख-दरद से कोई वास्ता नहीं होता। खुद का अपना फायदा होता हो, तो हमको दूसरे के दरद से परेशान होने की जरूरत नहीं है।

Scanned with CamScanner

नर-पशु की तरह न जिएँ

मित्रो! जब हम बिल्ली थे, तो हमको कोई कष्ट नहीं होता था। चूहे को पकड़ते थे, चूहा चिल्लाता था। कहता था कि मौसी जी! हमारे ऊपर दया कीजिए। हमारे भी बाल-बच्चे हैं और हमको भी जिंदा रहने दीजिए। आपको दिखाई नहीं पड़ता कि हमें कैसा कष्ट हो रहा है और आप हमारा मांस नोच रही हैं, आपको दया नहीं आती? बिल्ली ने कहा—हमको कोई दया नहीं आती और दया से हमारा कोई वास्ता नहीं है और बेटे, हमारा वह साँप अभी भी विद्यमान है, जो मेंढ़क निगलते समय, चूहा निगलते समय खुश होता था। अभी हमारा वह साँप जहाँ-का-तहाँ विद्यमान है। अजगर जहाँ-का-तहाँ विद्यमान है। मुरगी जब सामने आती है और कहती है कि ताऊ जी! आप हमें क्षमा कीजिए। आपके पास तो देखिए कैसी बढ़िया-बढ़िया चीजें हैं। आपके लिए गेहूँ मौजूद है, दूध, दही, फल मौजूद हैं। फिर आप हमारी जान लेने के लिए क्यों उतारू हैं? आपको मालूम नहीं है कि हमारे भीतर भी जान है। अगर आपके कोई बाल नोंचे, तो आपको कितना कष्ट होता है। आप हमारे पंख नोच रहे हैं। हमने कहा—हमारे भीतर दया नाम की कोई चीज नहीं है। हम चूँकि अपना जायका पसंद करते हैं, इसलिए आपको मारने में हमें कोई कष्ट नहीं होता, हमें कोई हैरानी नहीं होती।

मित्रो! बकरी ने भी यही कहा—स्वामी जी! आप तो बड़े दयालु हैं, सब पर दया करते हैं। हमारे ऊपर भी दया कर दीजिए। हमको भी जिंदा रहने दीजिए। नहीं, आपका मांस बहुत जायकेदार है, इसलिए हम खाएँगे। उसने कहा—स्वामी जी! आप तो दूसरी चीजें भी खा सकते हैं। नीबू का अचार खा सकते हैं। नहीं, हम नीबू का अचार नहीं खाएँगे; क्योंकि हमारे भीतर साँप बैठा हुआ है। अजगर की तरक्की दूसरों को कष्ट दिए बिना नहीं हो सकती। दूसरों को कष्ट नहीं देंगे, तो हमको चैन कैसे पड़ेगा? इसलिए आपको कष्ट देकर, आपको बिलखते देखकर, आपको तरसते देख करके हमको खुशी होती है। बेटे, हमारे भीतर का अजगर हमको चैन नहीं लेने देता। जब तक हम दूसरों को सता नहीं लेते, दूसरों को पीड़ा नहीं दे देते, दूसरों को किसी मुसीबत में धकेल नहीं देते, तब तक हमको राहत नहीं मिलती और तब तक हमारे अहंकार का फन ऊपर ही रहता है।

मित्रो! आप ऐसा क्यों करते हैं? आपको यहाँ तो खाने-पीने का साधन है। हाँ, हमारे घर में जमीन भी है, हमारे घर में पैसा भी है। हमारा बाप बहुत सारी दौलत छोड़कर के मरा है। हम हत्या न करेंगे, तो हमारा पिशाच कैसे तृप्त होगा। इसलिए हमको किसी की हत्या करनी पड़ेगी। किसकी हत्या करेंगे? हम डाका डालने जाएँगे। तो आप डाका डालने आए हैं? भाई साहब! पैसा ले जाइए। पैसा ले जाएँ, दान दे रहा है हमको? अंगुलिमाल कहता था कि हम कोई पंडित हैं, जो हमें दान दे रहा है। हम तो अपनी मेहनत की कमाई खाते हैं। तो मेहनत से क्या करेंगे? आपकी गरदन काटेंगे और आपका पेट चीरेंगे और आपके हाथ की उँगलियाँ काटेंगे। इतना करने के बाद हम आपका पैसा लेंगे। नहीं, आप पैसा ले जाइए, पर हमारी जान बख्श दीजिए। नहीं, हम आपका पैसा भी नहीं छोड़ना चाहते हैं और जान भी नहीं छोड़ेंगे। यह कौन है जो हमारे भीतर बैठा हुआ है? हमारे भीतर यह एक पिशाच बैठा हुआ है और एक पशु बैठा हुआ है। इन पशु और पिशाच में से पशु अनैतिक नहीं होता।

जड़ता को दूर करें

मित्रो! पशु के अंदर एक और बात पाई जाती है। उसका नाम है—जड़ता। जड़ता किसे कहते हैं? जड़ता उसे कहते हैं कि जानवर तब तक कुछ करने के लिए रजामंद नहीं होता, जब तक कोई मजबूरी उसके सामने न आ जाए। मसलन शेर जब भूखा होगा तो उठेगा और भूखा न हो तब? हमने शेरों के इलाके में देखा है, सब शेर चुपचाप पड़े रहते हैं। गधे उनके पास में घास चरते रहते हैं। भाई साहब! आइए, कुछ नाश्ता-पानी तैयार है, हमको खा लीजिए। हम तो बेकार घूम रहे हैं। आप तो शेर हैं, आप खा लीजिए मुझे। अरे! जा-जा, हम क्यों खाएँगे तुझे? अभी तो भूख भी नहीं है, हम क्यों उठेंगे? बस, टाँग चौड़ी करके शेर पड़ा रहता है। उठिए तो सही, सवेरा हो गया। चल, जब हमको भूख लगेगी तब उठेंगे। उससे पहले हिलने-डुलने को तैयार नहीं है। ये हैं—पशु। कौन से पशु? जिनको हम आलसी कहते हैं।

हमारे भीतर भी एक पशु बैठा है, जिसको हम आलस्य कहते हैं। एक पशु जो हमारे दिमाग पर हावी रहता है, उसको प्रमाद कहते हैं। पशु यहाँ से प्रारंभ होता है, जो निष्क्रिय है। जिसके अंदर क्रियाशीलता नहीं है, जिसके

Scanned with CamScanner

अंदर जड़ता है, जो मेहनत, मशक्कत करने से इनकार करता है। जब कोई भी पुरुषार्थ करने के लिए कहते हैं तो इनकार करता है। कहता है कि हमको आराम चाहिए। हमको मौज चाहिए। हमको मेहनत नहीं करनी चाहिए। यह हमारे भीतर पशु बैठा हुआ है और वह बुला-बुलाकर हमारे ऊपर दरिद्रता डाल देता है। कहता है कि हमको दरिद्र रहना चाहिए; क्योंकि हम परिश्रम नहीं करना चाहते।

मित्रो! हम शारीरिक परिष्कार से इनकार करते हैं और मानसिक परिश्रम से इनकार करते हैं। हमारा पशु कहता है, इसीलिए पशु जैसा नंगा-उघारा रहता है। कपड़े से महरूम रहता है। इधर-उधर मारा-मारा डोलता है। पानी में भीगता रहता है। इसी तरीके से हमारा पशु दरिद्रता के गर्त में धकेलता है और हमारा पशु हमसे वह काम कराता है, जिसमें नीति, नियम और मर्यादाओं का पालन शामिल नहीं है। नीति, नियम और मर्यादाओं का हम मखौल उड़ाते हैं और हम यह कहते हैं कि हमारा नाम है—हिप्पी। तो भाई साहब! आप क्या करेंगे? हिप्पी हैं तो हम यह करेंगे कि समाज की सारी-की-सारी मर्यादाओं को तोड़कर रखेंगे। इससे क्या फायदा होगा? फायदा हो या न हो, समाज की मर्यादा हमको बरदाश्त नहीं है। इसीलिए हम समाज की मर्यादा, कायदे-कानून को तोड़ना चाहते हैं। हिप्पी जो हमारे भीतर बैठा हुआ है, यह कौन है? यह जानवर है, जिसके ऊपर सिद्धांत लागू नहीं हो सकते। जो कायदे को नहीं मानता। जो मर्यादा और बंधनों से इनकार करता है। हमारे अंदर पशु बैठा है।

बहिरंग जीवन का परिष्कार

मित्रो! पिशाच का हवाला अभी मैं आपको दे चुका हूँ। जो दूसरों को कष्ट देने में पिघलता नहीं है, बल्कि प्रसन्न होता है। पिछली चीजों को हम पढ़ते हैं, तो बेटे, हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं। मिस्र के पिरामिड किस तरीके से बने? चाइना की दीवार किस तरीके से बनी? ये सारे-के-सारे किस्से आप सुनेंगे, तो आपकी आँखों में से खून टपक पड़ेगा। आदमी कितना दुष्ट हो सकता है? इसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। मिस्र के पिरामिडों में मिस्र के जिन राजाओं के साथ एक-एक हजार औरतें और रखैलें रखी हुई थीं और जिनके एक-एक, दो-दो हजार बच्चे थे, उन्होंने हुक्म दिया था कि हमारे मरने के बाद हमारी इन औरतों को हमारे साथ जिंदा दफन कर दिया जाए। मारकर नहीं, वरन जिंदा दफन कर दिया जाए और हमारे दो हजार बच्चों को भी हमारे साथ जिंदा दफन कर दिया जाए। हम मरेंगे तो ये हमारे बच्चे और औरतें हमारे साथ जाएँगी। जिंदा चीत्कार करती हुई, हाहाकार करती हुई औरतें कहती रहीं कि आप तो पति देवता थे। हमको आशीर्वाद देकर लाए थे। नहीं, हमको इससे कोई मतलब नहीं, हम तो आप सभी को अपने साथ ले जाना चाहते हैं? मरने के बाद में हमको जब अय्याशी की जरूरत पड़ेगी, विलासिता की जरूरत पड़ेगी, तब कैसे काम चलेगा? उन्होंने अपने नौकरों को, जो कि उनके खानदान में काम करते थे, दो-दो हजार नौकर थे। जब इतनी औरतें जा रही हैं, इतने बच्चे जा रहे हैं, तो उनके लिए नौकरों की जरूरत पड़ेगी। खाना कौन पकाएगा, काम कौन करेगा? कितने नौकर चाहिए? दस हजार नौकर चाहिए। दस हजार नौकरों के लिए गड्ढे तो इतने नहीं बन सके, पर दस हजार नौकरों को मार करके चक्की में पीस लिया गया और जो पिरामिड बने हुए हैं, वे उनकी हड्डियों और खून से बनाए गए हैं।

मित्रो! इनसान को मैं क्या कह सकता हूँ? इनसान पर पिशाच और राक्षस और न जाने क्या-क्या होता है? बहुतों के भीतर होता है, लेकिन यह मत सोचिए कि हमारे और आपके भीतर नहीं है। कभी-कभी हमारा पिशाच ऐसा निकल पड़ता है कि हम हैरान हो जाते हैं। कभी-कभी हमारा पिशाच जब गरम होता है, तब हमारा पिशाच ऐसा होता है कि हम अपनी हत्या कर डालते हैं और औरों की भी हत्या कर डालेंगे और कभी-कभी हमारा पशु जब गरम होता है, तो न जाने क्या-से-क्या कर डालता है। बेटे, क्या करना चाहिए? यह हमारी जलालत दूर होनी चाहिए और यह गलीजत दूर होनी चाहिए और इसको परिष्कृत होना चाहिए। हमको और आपको आदमी की जिंदगी में प्रवेश करना चाहिए। आदमी की शक्ल तो हमारे पास है, पर आदमी की जिंदगी से हम दूर हैं। एक चीज भगवान ने अभी भी नहीं दी है और उसका नाम है—प्रकृति। हमारी आकृति आदमी की तो है, पर प्रकृति अभी तक नहीं है। तो क्या करना पड़ेगा? बेटे, हमको अपने बहिरंग जीवन को परिष्कृत करना पड़ेगा।

मित्रो! बहिरंग जीवन को परिष्कृत करने के लिए क्या करना चाहिए? दुनिया में एक ही मेथड और एक ही सिद्धांत है, जो काम आया है और वही व्यक्ति के जीवन के

Scanned with CamScanner

परिष्कार में भी काम आ सकता है। क्या चीज हो सकती है? बेटे! वह है—तपाया जाना। तपाने से क्या बन जाता है? पदार्थ को तपाने से मजबूती भी आ जाती है और क्वालिटी भी अच्छी होती है। लोहे का उदाहरण मैंने पहले ही आपको दिया है। भट्ठी में तपाने के बाद में लोहा अच्छा बन सकता है। लोहे की हम भस्म बनाते हैं। ताँबा भस्म बनाते हैं, बंग भस्म बनाते हैं। आप यह क्या करते हैं? अरे बेटे! हम उसे जलाते हैं, तपाते हैं। आप पुराने जमाने के हकीमों से पूछिए। क्यों साहब! आप जो अच्छी चीजें बनाते हैं। वे कैसे बनाते हैं? अभ्रक भस्म कैसे बनाते हैं? गटापार्चा, जो छदाम भर का होता है, दो पैसे का होता है, उसको हम जलाते हैं और जलाने के बाद में अभ्रक भस्म बनाते हैं और क्या-क्या बनाते हैं? हम रसायन बनाते हैं। रसायनों में मकरध्वज प्रसिद्ध है। उसमें भी पारे को तपाते हैं। सारी चीजों को, जितनी भी आप मालूम कीजिए, बेहतरीन पौष्टिक भस्में और जो कीमती दवाइयाँ हैं, सबमें गरमी दी जाती है। तरह-तरह के अर्क उतारे जाते हैं। किसका अर्क है? सौंफ का अर्क है। कैसे बनाया? हमने सौंफ को पानी में डाला, आग पर चढ़ाया और जो भाप बनी, उसे दूसरे बरतन में उतार लिया। यह क्या किया? भाई साहब! यह आग का संस्कार है। आग के संस्कार से हर चीज की सफाई होती है।

[क्रमशः]

काशी के राजा ब्रह्मदत्त के समय धर्मपाल नाम का एक ब्राह्मण था। वह बड़ा ही धर्मनिष्ठ और सदाचारी था। धर्मपाल ने अपने पुत्र को तक्षशिला पढ़ने के लिए भेजा। एक दिन किसी प्रसंगवश उस युवक ने अपने गुरु से कहा—"गुरुदेव! हमारे कुल में सात पीढ़ियों से कोई युवावस्था में नहीं मरा।" आचार्य विद्यार्थी की बात का सत्य जानने के लिए विद्यालय को दूसरे की देख-रेख में सौंपकर काशी रवाना हुए। रास्ते में उन्होंने बकरी की कुछ हड्डियाँ लीं और काशी में जाकर धर्मपाल ब्राह्मण से बोले—"बहुत दुःख की बात है, तुम्हारा पुत्र असमय मृत्यु को प्राप्त हो गया।"

यह सुनकर धर्मपाल हँसने लगा और बोला—"महाराज! कोई और मरा होगा, हमारे कुल में सात पीढ़ियों से कोई युवा नहीं मरा।" आचार्य बोले—"ये हड्डियाँ तुम्हारे लड़के की हैं।" धर्मपाल ने उन्हें बिना देखे ही कहा—"यह हड्डियाँ कुत्ते-बकरी की होंगी, ये हमारे परिवार से किसी की नहीं हो सकतीं।"

अंत में आचार्य ने सच बताया और उनके कुल में सात पीढ़ियों से किसी युवा की मृत्यु न होने का रहस्य पूछा। धर्मपाल ने कहा—"महाराज! हम धर्म का आचरण करते हैं, सत्य बोलते हैं, जरूरतमंदों की सेवा करते और दान देते हैं। इस प्रकार धर्म की रक्षा करने पर धर्म हमारी रक्षा करता है।"

Scanned with CamScanner

श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक व्यक्तित्व

विश्वविद्यालय परिसर में शारदीय नवरात्र के अवसर पर इस बार श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या द्वारा नवरात्र की संध्याकालीन ऑनलाइन कक्षाएँ ली गईं। नवरात्र में 17 अक्टूबर से 24 अक्टूबर तक प्रतिदिन ली जाने वाली इन कक्षाओं का विषय था—'**श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक व्यक्तित्व**'। श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक व्यक्तित्व संबंधी यह प्रकरण दूसरे अध्याय के 54वें श्लोक से आरंभ होकर 65वें श्लोक तक है।

(1) प्रथम दिवस—इस दिन आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति जिज्ञासु अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से यह प्रश्न करते हैं—

अर्जुन उवाच—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥

—गीता 2/54

अर्थात हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है (पहला प्रश्न)? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है (दूसरा प्रश्न)? कैसे बैठता है (तीसरा प्रश्न)? और कैसे चलता है (चौथा)? इस तरह आध्यात्मिक व्यक्तित्व के रहस्य को जानने की जिज्ञासा से युक्त होकर अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष उपर्युक्त ये चार प्रश्न प्रस्तुत करते हैं।

(2) द्वितीय दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 55 वें श्लोक की व्याख्या की गई। इस श्लोक के माध्यम से अर्जुन के पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

श्रीभगवानुवाच—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

— गीता 2/55

अर्थात स्थितप्रज्ञ पुरुष का यही लक्षण है कि वह अपने मन की समस्त कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और अपनी आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है। चूँकि संपूर्ण कामनाएँ मन में ही उत्पन्न हुआ करती हैं और मन में स्थित कामनाओं का कोई अंत नहीं है, वो तो सागर में निरंतर उठने वाली लहरों के समान हैं। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण किसी विशेष कामना के त्याग की बात नहीं करते, बल्कि समस्त कामनाओं का भली प्रकार त्याग करने की बात कहते हैं। इस श्लोक में '**प्रजहाति**' यानी 'भली भाँति त्यागना' एक ऐसा शब्द है, जिसके क्रियान्वित होने पर मन की समस्त कामनाएँ उसमें आकर समा जाती हैं और उसमें विसर्जित हो जाती हैं, विलीन हो जाती हैं।

इस तरह भगवान श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ पुरुष के केवल दो ही लक्षण या गुण बताए हैं—(1) मन में स्थित समस्त कामनाओं का भली प्रकार त्याग, (2) अपनी आत्मा से आत्मा में ही संतुष्टि। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के मन में कामनाएँ जन्म नहीं ले पातीं; क्योंकि उसके मन से कामनाओं का संपूर्ण विसर्जन हो जाता है, उनका अंशमात्र भी शेष नहीं रहता। इसलिए उसका मन शांत, स्थिर व स्वच्छ होता है और धीरे-धीरे उसके मन का भी विसर्जन हो जाता है और वह अपनी आत्मा-से-आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उसमें स्थिर रहता है।

(3) तृतीय दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 56वें श्लोक की व्याख्या की गई। इस श्लोक के द्वारा भगवान कृष्ण अर्जुन के दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

—गीता 2/56

अर्थात दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निस्पृह है, तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

व्यक्ति को प्रतिकूल संवेदन में दुःख और अनुकूल संवेदन में सुख की अनुभूति होती है। इसलिए उसकी वाणी

Scanned with CamScanner

से भी विशेष रूप से दो भावों की ही अभिव्यक्ति हुआ करती है—(1) दुःखद भाव की अभिव्यक्ति एवं (2) सुखद भाव की अभिव्यक्ति। दुःख की अवस्था में संतापयुक्त होकर व्यथित हृदय से जब व्यक्ति अपने आंतरिक भावों को वाणी द्वारा अभिव्यक्त करता है, तब उसके बोलने में विषादयुक्त दुःखद भावों की अभिव्यक्ति होती है और सुख की अवस्था में आह्लादयुक्त होकर जब वह अपने आंतरिक भावों को वाणी द्वारा अभिव्यक्त करता है, उस समय प्रसादयुक्त सुखद भावों की अभिव्यक्ति होती है; लेकिन स्थितप्रज्ञ योगी की वाणी से न तो दुःख का विषाद प्रकट होता है और न ही सुख की प्रशंसापूर्ण अभिव्यक्ति होती है। दोनों प्रकार के भाव व विकारों से रहित होकर स्थितप्रज्ञ पुरुष सदैव सर्वहितकारी सत्यनिष्ठ वाणी ही बोलता है। चूँकि स्थितप्रज्ञ योगी सुख-दुःख की अवस्था में मन के विकारों से रहित होकर समभाव में स्थित रहता है, इसलिए उसमें राग, भय व क्रोध ये तीनों विकार नहीं होते। इसलिए वह रागरहित, भयरहित व क्रोधरहित हो जाता है।

(4) चतुर्थ दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 57वें श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

—गीता 2/57

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कह रहे हैं कि जो इस संसार में स्नेह भाव से रहित है तथा प्रारब्धानुसार शुभाशुभ के प्राप्त होने पर भी न शुभ के प्रति वह अभिनंदन करता है और न अशुभ के प्रति द्वेष, उस योगी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

महर्षि पतंजलि का एक सूत्र है—**सुखानुशयी रागः, दुखानुशयी द्वेषः**। सुख से राग उत्पन्न होता है और दुःख से द्वेष जन्म लेता है, लेकिन यदि व्यक्ति का विवेक-वैराग्य साथ में है, तो व्यक्ति सुख की कामना नहीं करता और दुःखों से दुःखी नहीं होता। शुभ का अभिनंदन और अशुभ की निंदा, ये दोनों ही वाणी के विकार हैं, जो शुभ के प्रति राग व स्नेह से जुड़ा हुआ है व अशुभ से द्वेष भाव से संबंधित है। जिसकी वाणी शुभ का अभिनंदन करती है और अशुभ की निंदा करती है, ऐसी वाणी प्रज्ञा में प्रतिष्ठित नहीं होती; क्योंकि प्रज्ञावान कभी भी, किसी से भी आसक्त नहीं होते। इसलिए स्थितप्रज्ञ पुरुष मोहरहित, स्वप्रशंसारहित व द्वेषरहित होते हैं।

(5) पंचम दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 58वें व 59वें श्लोक की व्याख्या की गई। इन श्लोकों में अर्जुन के द्वारा स्थितप्रज्ञ पुरुष के विषय में पूछे गए तीसरे प्रश्न कि स्थितप्रज्ञ पुरुष कैसे बैठता है—का उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिताः॥

—गीता 2/58

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसोवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

—गीता 2/59

अर्थात जैसे—कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इंद्रियों के विषयों से इंद्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझना चाहिए॥ 58॥

इंद्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है॥ 59॥

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि स्थितप्रज्ञ पुरुष हर्ष में, विषाद में, अनुकूलता में और प्रतिकूलता में भेद नहीं करते। बल्कि इन सब में अभेद रहते हैं और यह तभी संभव हो पाता है, जब वे कछुए के समान सब ओर से अपने अंगों को समेट लेते हैं अर्थात इंद्रियों को उनके विषयों से हटा लेते हैं यानी इंद्रियों के विषयों से सब प्रकार से इंद्रियों को समेट लेते हैं, सिकोड़ लेते हैं।

सामान्य मनुष्यों में यह देखा जाता है कि इंद्रियविषयों के न रहने पर भी इंद्रियों में अपने विषयों के लिए आसक्ति रहती है; जैसे—व्रत-उपवास करने पर फलाहार करते समय भी कुछ स्वादिष्ट या चटपटा खाने का मन बना रहता है, यानी व्रत-उपवास में भी स्वादिष्ट खाने के प्रति आसक्ति होती है, इच्छा होती है; लेकिन स्थितप्रज्ञ पुरुष में परमात्मा का साक्षात्कार करके सभी तरह की आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं, यानी स्थितप्रज्ञ पुरुष की इंद्रियों में अपने इंद्रियविषयों के प्रति आसक्ति नहीं होती।

(6) षष्ठ दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 60वें व 61वें श्लोक की व्याख्या की गई।

Scanned with CamScanner

यततो ह्यापि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

—गीता 2/60

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

—गीता 2/61

अर्थात हे अर्जुन! आसक्ति का नाश होने के कारण ये प्रमथनस्वभाववाली इंद्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं॥ 60॥

इसलिए साधक को चाहिए कि वह उन संपूर्ण इंद्रियों को वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे; क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो पाती है॥ 61॥

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को इंद्रियों का स्वभाव बताते हुए यह कहते हैं कि अज्ञानी, अहंकारी और मूढ़ व्यक्तियों के मन को ये इंद्रियाँ तो बड़ी सरलता से अपने वश में कर लेती हैं, लेकिन विवेकशील पुरुषों के मन को भी ये प्रमथनस्वभाववाली इंद्रियाँ बलपूर्वक खींचकर अपने विषयों में लगा देती हैं। चूँकि विवेकशील पुरुषों का मन आसानी से हरण नहीं होता, इसलिए इंद्रियों को अपने बल का प्रयोग करना पड़ता है और इस बल के सहारे वे बुद्धिमान या विवेकशील कहे जाने वाले पुरुषों के मन को विषयों में आसक्त कर देती हैं।

इंद्रियाँ कितनी बलवान होती हैं और यदि उन्हें वश में न किया गया, तो वे क्या कर सकती हैं? इसे बताते हुए तुलसीदास जी महाराज कहते हैं—

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

—रा.च.मा., उत्तरकांड 121/4

अर्थात विषयों का सान्निध्य प्राप्त होते ही मननशील मनीषियों के हृदय में भी विषयासक्ति रूप अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं, फिर सामान्य मनुष्यों की बात ही क्या है?

लेकिन जो स्थितप्रज्ञ होता है, वह सब कुछ भगवान के ऊपर छोड़ देता है, उन्हें ही सब समर्पित कर देता है। उसका यह समर्पण ही उसके असंयम के क्षणों में, कमजोरी के क्षणों में सहारा बनता है। इंद्रियाँ बलपूर्वक खींचकर अपनी विषय-वासनाओं में उन व्यक्तियों को गिरा देती हैं, जो अपने को संयमी कहते हैं, परंतु जो अहंकारी भी होते हैं। लेकिन इंद्रियाँ उन संयमियों को नहीं गिरा पातीं, जो विनम्र हैं, जो अहंकारी नहीं हैं, जो अपनी कमजोरियों को स्वीकारते हैं। जो अपनी कमजोरियों को दबाते नहीं हैं, उन्हें झुठलाते नहीं हैं, लेकिन परमात्मा के हाथों में ये सब समर्पित कर देते हैं। ऐसे संयमी व्यक्ति धीरे-धीरे इंद्रियरसों से, इंद्रियों के दबाव से, अतीत में किए गए कर्मों के प्रभाव से, आदतों से, यांत्रिकता से—इन सभी से मुक्त हो जाते हैं और तभी उनका स्थितप्रज्ञ की अवस्था में प्रवेश होता है। स्थितप्रज्ञ की अवस्था में अर्थात समाधि में लीन होने पर ही उन्हें परम ज्ञान उपलब्ध होता है।

(7) सप्तम दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 62वें व 63वें श्लोक की व्याख्या की गई—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

—गीता 2/62

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

—गीता 2/63

अर्थात विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है॥ 62॥

क्रोध से अत्यंत मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है॥ 63॥

यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण सामान्य मनुष्यों की स्थिति तथा योगी पुरुषों के पतन (योगभ्रष्ट होने) के कारणरूप—काम व क्रोध का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए यह बताते हैं कि मन का पतन कहाँ से शुरू होता है! मन संसार-उन्मुख कैसे होता है! मन कहाँ से स्वयं को खोना शुरू करता है! तो इसका मूल कारण है—विषयों के चिंतन यानी कामना के विचारों से। विषयों का विचार करने से विषयों के प्रति आसक्ति पनपती है, जिसके कारण उन्हें प्राप्त करने की इच्छा होती है। यह वह पहली लहर है, जिसके कारण बाहरी संसार व्यक्ति के मन में प्रवेश करता है और फिर इसके साथ ही सब कुछ आरंभ होता है।

(8) अष्टम दिवस—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 64वें व 65वें श्लोक की व्याख्या की गई—

Scanned with CamScanner

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

—गीता 2/64

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

—गीता 2/65

अर्थात अपने अधीन किए हुए अंत:करण वाला साधक, राग-द्वेष से रहित हो, अपने वश में की हुई इंद्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अंत:करण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है॥ 64॥

अंत:करण की प्रसन्नता होने पर इसके संपूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भली भाँति स्थिर हो जाती है॥ 65॥

इन दोनों श्लोकों के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन द्वारा पूछे गए चौथे व अंतिम प्रश्न—**स्थितप्रज्ञ व्रजेत किम्?** स्थितप्रज्ञ पुरुष चलता कैसे है, अर्थात व्यवहार कैसे करता है—का उत्तर देते हैं। इसका उत्तर देते हुए श्रीभगवान कहते हैं कि स्थितप्रज्ञ योगी का अंत:करण उसके अधीन है, उसकी बुद्धि परमात्मतत्त्व से संयुक्त है, उसका अहं गल गया है, वह अहंकाररहित हो गया है, उसका मन संयमित है और इंद्रियाँ उसके नियंत्रण में हैं। वह पूर्णतया सुस्थिर, शांत, अविचलित है, अत: वह राग-द्वेष से रहित हो आवश्यकतानुसार लोकोपयोगी कार्य हेतु शरीर धारण करने के लिए जो भी आवश्यक हैं, उन पदार्थों का प्रयोग करते हुए संसार में विचरण करता है।

इस तरह शारदीय नवरात्र के अवसर पर श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक व्यक्तित्व यानी स्थितप्रज्ञ पुरुष से संबंधित गूढ़ विषय पर विस्तृत चर्चा की गई और इस चर्चा में आध्यात्मिक व्यक्तित्वों की मनोवैज्ञानिकों द्वारा बताए गए लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक विवेचना भी की गई। ❑

जंगल में एक शिकारी के पीछे बाघ पड़ गया। घबराकर शिकारी एक वृक्ष पर चढ़ गया। उसी वृक्ष पर एक रीछ भी बैठा था। बाघ को पेड़ पर चढ़ना नहीं आता था, इसलिए वह नीचे ही बैठकर रीछ या मनुष्य के नीचे उतरने का इंतजार करने लगा।

काफी समय बीत जाने पर भी जब दोनों में से कोई भी नीचे नहीं उतरा तो बाघ ने रीछ से कहा—"यह मनुष्य हम दोनों का शत्रु है। तू इसे धक्का मार, मैं इसे खाकर चला जाऊँगा और तेरा जीवन बच जाएगा।" रीछ ने कहा—"नहीं, यह मेरा धर्म नहीं।" मध्यरात्रि में रीछ की आँख लग गई।

अब बाघ ने शिकारी से कहा—"वह रीछ को धक्का मार दे तो उसकी जान बच जाएगी।" शिकारी ने रीछ को धक्का मार दिया, किंतु संयोग से गिरते-गिरते वृक्ष की एक डाल रीछ की पकड़ में आ गई।

अब बाघ ने रीछ से कहा—"देखा, जिस मनुष्य की तूने रक्षा की, वही तुझे मारने को तैयार हो गया। अब तू इसे धक्का मार।" रीछ ने उत्तर दिया—"वह भले ही अपने धर्म से विमुख हो गया हो, परंतु मैं ऐसा नहीं करूँगा।" परोपकारी व भावनाशील दूसरे के अपकार के बदले भी अपकार नहीं, उपकार ही करते हैं।

Scanned with CamScanner

अपनों से अपनी बात

अखण्ड दीपक की आध्यात्मिक ऊर्जा एवं अखण्ड ज्योति की वैचारिक ऊर्जा का केंद्र शांतिकुंज

अखण्ड ज्योति को एक प्रतीक माना जाए, एक आदर्श कहा जाए या उसे उसके आराधक का प्रतिनिधिस्वरूप माना जाए—हर हालत में उसकी ऐसी प्रकाश-किरणें फूटनी चाहिए, जो युगधर्म की महती आवश्यकताओं को पूरा करने में प्राणपण से कटिबद्ध दृष्टिगोचर हों। संक्षेप में एक ही चिंतन द्वारा इस प्रयास का स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है और वह है युगधर्म का निर्वाह। समय की चुनौती को स्वीकारना अर्थात युग-परिवर्तन। इस परिवर्तन के लिए जो कुछ आवश्यक है, उसके सुविस्तृत होते हुए भी सरंजाम उठाने का संकल्प अखण्ड ज्योति ने अब तक पूरा किया है और वह व्यक्ति विशेष का संचालन उठ जाने पर भी अनंतकाल तक अपनी ज्योति-ज्वाला ज्वलंत रखे रहेगी।

—परमपूज्य गुरुदेव

परमपूज्य गुरुदेव ने कहा कि भारतीय चिंतन में हम दो तरह के संसारों की बात करते रहे हैं, दो तरह के जगतों की उपस्थिति का चिंतन हमने समस्त विश्व को प्रदान किया है। पहला—स्थूलजगत् है, दूसरा—सूक्ष्म जगत्। पहला पदार्थ का तो दूसरा चेतना का जगत् है। एक प्रत्यक्ष है और दूसरा परोक्ष। पहले की पहचान वैज्ञानिक उपलब्धियों से होती है तो दूसरा आत्मिक उपलब्धियों या आध्यात्मिक पुरुषार्थ की वजह से अपनी पहचान बनाता है। इनमें से बाहर के जगत् में हलचलों को, गतिविधियों को अंजाम देने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, उसे हम ऊर्जा के नाम से जानते हैं, एनर्जी के नाम से पुकारते हैं।

भौतिक जगत्—स्टेटिक से लेकर डायनेमिक और नाभिकीय से लेकर आणविक ऊर्जा की बातें करता है। हम किसी भी वैज्ञानिक विधा को यदि देखें, पदार्थ के जगत् के किसी भी आयाम को यदि देखें तो जो घटना वहाँ घट रही है, वो ऊर्जा के प्रवाह के कारण ही घट रही है। ऊर्जा की हलचलें यदि न हों तो बाहर के जगत् में कुछ घटेगा नहीं, मात्र सन्नाटा व्याप्त रहेगा।

जिस तरह से स्थूलजगत् में शक्ति का आधार ऊर्जा है—उसी तरह से आत्मिक, आध्यात्मिक और अलौकिक जगत् में शक्ति का आधार श्रद्धा को कहकर पुकार सकते हैं। बाहर के जगत् में घटनाएँ तब घट पाती हैं, जब आवश्यक ऊर्जा की पृष्ठभूमि उपलब्ध हो। उसी तरह से आत्मिक जगत् में भी सिद्धियाँ या विभूतियाँ तभी उपलब्ध हो पाती हैं, जब उनके पीछे श्रद्धा का आधार हो।

शारीरिक, बौद्धिक बल की फिर भी अपनी एक सीमा है और उनका एक समय नियत है। एक दिन शरीर भी छूट जाता है, संपदा भी छूट जाती है और बुद्धि भी एक सीमा तक ही इनसान का साथ दे पाती है। परंतु श्रद्धा एक ऐसी शक्ति है, जिसको न समय समाप्त कर सकता है और न काल; क्योंकि वहाँ खोने को कुछ नहीं है, मात्र पाने को है। अहंकार के खोने पर ही श्रद्धा संभव हो पाती है। श्रद्धा के जन्मते ही, आत्मिक जगत् के खजाने स्वत: ही साधक को प्राप्त हो जाते हैं।

गायत्रीसाधकों के लिए वसंत पंचमी श्रद्धा की अभिव्यक्ति का पर्व कहा जा सकता है। यह अवसर हमारे भीतर की श्रद्धा को एक बड़े उद्देश्य के लिए समर्पित कर देने के उद्देश्य से आता है। आज जब हम युगतीर्थ शांतिकुंज की स्थापना के 50 वर्षों का उत्सव मना रहे हैं तो इस अवसर पर आई वसंत पंचमी का उद्देश्य उसी श्रद्धा की अभिव्यक्ति है, जो प्रत्येक साधक की साधना यात्रा का प्रथम पड़ाव है।

संभवतया यही कारण था कि जिसके कारण परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री परिवार की यात्रा के सभी महत्त्वपूर्ण पड़ावों के लिए वसंत पंचमी का ही चयन किया।

उनके द्वारा गायत्री महापुरश्चरणों की अतिमानवीय यात्रा को प्रारंभ करना रहा हो अथवा गायत्री तपोभूमि एवं

Scanned with CamScanner

शांतिकुंज की स्थापना का अवसर रहा हो अथवा अखण्ड ज्योति पत्रिका की शुरुआत—इन सबके लिए परमपूज्य गुरुदेव ने वसंत पंचमी के पुनीत दिवस का ही चयन किया, क्यों? क्योंकि यदि इस अवसर पर उमड़ी श्रद्धा सही अर्थों में साधकों के व्यक्तित्व में अवतरित होती है तो जो परिणाम उसका निकलकर आता है, वो व्यक्तित्व की उत्कृष्टता के रूप में निकलकर आता है। जिसके व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का अवतरण हो जाए तो ऐसे व्यक्ति के स्वयं के व्यक्तित्व में आदर्शवादिता होती है, परंतु दूसरों के लिए उसके अंतस् में उदारता-आत्मीयता होती है।

यह उमड़ी हुई श्रद्धा ही अखण्ड ज्योति का शाश्वत प्रवाह है। जिसके भी जीवन में यह आत्मिक ऊर्जा प्रवाहित होती है, उसके जीवन को वह उत्कृष्ट बना देती है। ऐसे ही व्यक्तित्व नर से नारायण, मानव से महामानव, क्षुद्र से महान बनते देखे जाते हैं। यदि गायत्री परिवार व युग निर्माण मिशन के भीतर भी कोई ऐसी ही दिव्य और अलौकिक ऊर्जा प्रवाहित होती है तो वह ऊर्जा श्रद्धा की है। सामूहिक व उच्च उद्देश्यों के लिए प्रवाहित ऊर्जा में ही वह शक्ति होती है, जो इतने बड़े संगठनों को जन्म दे पाने की ताकत रखती है। बिना इस तरह की ऊर्जा के आधार के सामान्य घरों के घरौंदे टूट जाते हैं तो इतना बड़ा संगठन इसके बिना स्थिर व प्रभावशाली कैसे रह सकता है?

यदि उस आध्यात्मिक ऊर्जा को हम साकार रूप में देखना चाहें तो हम उसे अखण्ड दीपक के रूप में देख सकते हैं और यदि उसे वैचारिक रूप में देखना चाहें तो इस अखण्ड ज्योति पत्रिका के रूप में देख सकते हैं, जो अभी हमारे हाथों में है। अखण्ड दीपक एक दीपक मात्र नहीं है। स्थूलदृष्टि से भी देखें तो एक ऐसा दीपक है, जिसकी साक्षी में परमपूज्य गुरुदेव ने 24 से अधिक गायत्री महापुरश्चरण संपन्न किए हों—वो किसी भी दृष्टि से साधारण कैसे कहा जा सकता है? सूक्ष्मदृष्टि से वह उस दिव्य ऊर्जा व आभा का प्रतीक है, जिसे हम इस धरती पर देवताओं, ऋषियों, परमात्मा के ईश्वरीय आश्वासन का प्रतीक व प्रत्यक्ष प्रमाण मान सकते हैं।

अखण्ड दीपक की प्रज्वलित लौ देवत्व की तेजस्विता के अवतरण और अभिवर्द्धन का साक्षात् प्रमाण है। प्रकाश अवतरित होता है तो अपनी शक्ति के अनुरूप क्षेत्र को आलोकित करता है और अखण्ड दीपक का क्षेत्र जितनी यह दृश्यमान पृथ्वी है—उतनी सारी-की-सारी परिधि उस दीपक के क्षेत्र में है। जब हम अखण्ड दीपक को प्रणाम करते हैं तो उसमें उपस्थित महाप्रज्ञा को प्रणाम करते हैं; क्योंकि उससे निकलने वाली किरणें, दिव्य तरंगें—इस धरती के अनेक क्षेत्रों में हलचलों को जन्म देती हैं।

सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उनका प्रभाव धरती पर हर जगह पड़ने लगता है। मुरझाते पुष्प खिल उठते हैं। चिड़ियाँ घोंसलों से बाहर निकलकर फुदकने लगती हैं। मुरगे बाँग देने लगते हैं। सोए हुए लोग आलस्य त्यागकर उठ खड़े होते हैं। निशाचरों का आतंक सूर्योदय होते ही समाप्त हो जाता है। कुछ ऐसा ही अखण्ड दीपक से निकलने वाली अलौकिक आभा के माध्यम से भी संपन्न होता रहा है और भविष्य में और प्रमुखता से घटता दिखाई पड़ेगा।

इस आध्यात्मिक ऊर्जा का वैचारिक प्रवाह कागज के उन पुलिंदों के भीतर है, जिसे हम अभी अपने हाथों में देख सकते हैं। अखण्ड ज्योति अन्य पत्रिकाओं की तरह दिखते हुए भी एक सामान्य पत्रिका नहीं है। इसका कागज, इसकी छपाई हैं तो साधारण ही, पर इसके पीछे कोई व्यावसायिक दृष्टिकोण नहीं है। जो पत्रिकाएँ ज्यादा संख्या में छपती हैं, उनके पृष्ठों पर विज्ञापनों की भीड़ होती है।

वैसा कुछ होते हुए हम अखण्ड ज्योति पत्रिका में नहीं देखते; क्योंकि इस तरह से आजीविका अर्जन करना, लाभ व मुनाफा बटोरना—न कभी अखण्ड ज्योति का उद्देश्य रहा है और न रहने वाला है। ऐसा साहस करना भी किसी दिव्य आध्यात्मिक ऊर्जा के भरोसे ही संभव हो पाता है।

इसके साथ ही अखण्ड ज्योति पत्रिका में छपने वाले लेखों के पीछे का भाव भिन्न है। प्रत्येक लेख गंभीर अध्ययन करने के उपरांत समाधानपरक भाव से लिखा जाता है। लेखों की उत्कृष्टता बरकरार रखने के लिए लेखनकर्त्ताओं की एक बड़ी टीम निरंतर कार्य करती रहती है। इसलिए इन लेखों की कीमत लगभग कुछ उन रत्नों के समकक्ष हो जाती है, जो समुद्रमंथन के उपरांत निकलकर आए थे। विज्ञान, ज्ञान, धर्म, अध्यात्म, मनोविज्ञान, पारिवारिक समस्याओं से लेकर सामाजिक समस्याओं के समाधान के सूत्र इस छोटी-सी पत्रिका में पड़ने वालों को खुद-ब-खुद मिल जाते हैं।

Scanned with CamScanner

इस तरह से यह पत्रिका लोक-मानस के परिष्कार हेतु एक गंभीर व विस्तृत प्रयास करती नजर आती है, इसीलिए आज अखण्ड ज्योति आर्थिक परंपरा के विपरीत प्रभाव में खड़े होने के बाद भी गर्व से खड़ी नजर आती है। बड़ी संख्या में छपने के साथ ही यह करोड़ों के अंतर्मन को झकझोरती है—परिणामस्वरूप लोकसेवियों का, आस्थावानों का, सृजनशिल्पियों का एक बड़ा समूह नित्यप्रति इस दैवी योजना के किसी भी कार्य को करने के लिए तत्पर खड़ा नजर आता है। नवयुग की दैवी चेतना के अवतरण का कार्य, जो कभी असंभव-सा प्रतीत होता था—आज साकार होता दिखाई पड़ता है; क्योंकि उसके पीछे अखण्ड दीपक की आध्यात्मिक ऊर्जा व अखण्ड ज्योति की महाप्रज्ञा साथ-साथ कार्य करते नजर आते हैं।

आज जब हम शांतिकुंज की स्थापना के 50 वर्षों को मना रहे हैं तो इस अवसर पर प्रत्येक साधक को कम-से-कम इतना संकल्प तो लेना ही चाहिए कि वह इस पवित्र वर्ष में अखण्ड दीपक के प्रकाश-क्षेत्र में 50 भावनाशील परिवारों को और जोड़े और 50 नए व्यक्तियों तक अखण्ड ज्योति पहुँचाने का सत्प्रयास भी करे। इस संक्रांति की वेला में श्रद्धा के सत्प्रचार की इससे शानदार परिणति और कुछ हो भी नहीं सकती है। ❑

पट्टन साम्राज्य के महामंत्री उदयन के पुत्र जैनों के तीर्थ का पुनरुद्धार करके अपने दिवगंत पिता की अपूर्ण इच्छा पूर्ण कर देना चाहते थे। तीर्थोद्धार का कार्य प्रारंभ हुआ तो जनता के प्रतिनिधियों ने महामंत्री से प्रार्थना की—"यद्यपि आप समर्थ हैं, किंतु हम लोगों को भी इस पुण्यकार्य में भाग लेने का अवसर प्रदान करें?" जनता की प्रार्थना स्वीकार की गई। जिसकी जितनी श्रद्धा और सामर्थ्य थी, उसने उतना धन दिया।

जब तीर्थ का उद्धार हो गया और आर्थिक सहायता देने वालों की नामावली घोषित की गई, तब सभी चकित रह गए। उस नामावली में सबसे पहला नाम भीम नामक एक श्रमिक का था, जिसने मात्र सात पैसे का दान दिया था। यह जानकर लोगों में रोष उत्पन्न होने लगा। महामंत्री लोगों की इस भावना को जान गए। वे बोले—"भाइयो! मैंने स्वयं और आप सबने इस तीर्थ के उद्धार में अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार पर्याप्त दिया है, लेकिन हमने जो कुछ दिया है वह हमारे धन का एक भाग ही है, किंतु यह भीम पता नहीं कितने दिनों के श्रम के बाद सात पैसे बचा पाया था। उसने तो अपना सर्वस्व ही दान कर दिया है। उसका दान ही सबसे बड़ा दान है, यह निर्णय करने में मुझसे कोई भूल तो नहीं हुई है न?" महामंत्री की बात सुनकर सबके सिर झुक गए। कोई उनके निर्णय का विरोध नहीं कर पाया।

Scanned with CamScanner

सुयोगों की वेला

सुखद सुयोगों की शुभ वेला आने वाली है,
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

महारोग से अधिक संक्रमण भय का फैला है,
देश-देश में छाया वातावरण विषैला है,
भूतल से भय का वह भूत भगाने वाली है।
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

ईश्वर का जो काम करेगा, वह निर्भय होगा,
तन-मन-आत्मा का बल उसका कभी न क्षय होगा,
आज आपदा यही बात समझाने वाली है।
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

युगऋषि के वंशज जो अपना लक्ष्य न भूलेंगे,
उनके बल से हर ऊँचाई मिलकर छू लेंगे,
हर जड़ता बेमौत वहाँ मर जाने वाली है।
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

माँ के संग अखण्ड ज्योति की जन्मशती होगी,
श्रद्धावानों बीच न होंगे तब कपटी-ढोंगी,
ऋतंभरा प्रज्ञा अब दंड सुनाने वाली है।
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

कभी न गुरु के लिए समर्पण जो डगमग होगा,
नहीं विपथ पर गया स्वार्थवश जिनका पग होगा,
माँ उन पर अनुदान अमित बरसाने वाली है।
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

डाल-डाल उस वेला नव किसलय उग आएँगे,
कोयल, कीर, मयूर, सभी उल्लास बढ़ाएँगे,
स्वर्गिक सुषमा सभी ओर अब छाने वाली है।
नई सुबह स्वर्णिम परिदृश्य दिखाने वाली है।

—शचीन्द्र भटनागर

Scanned with CamScanner

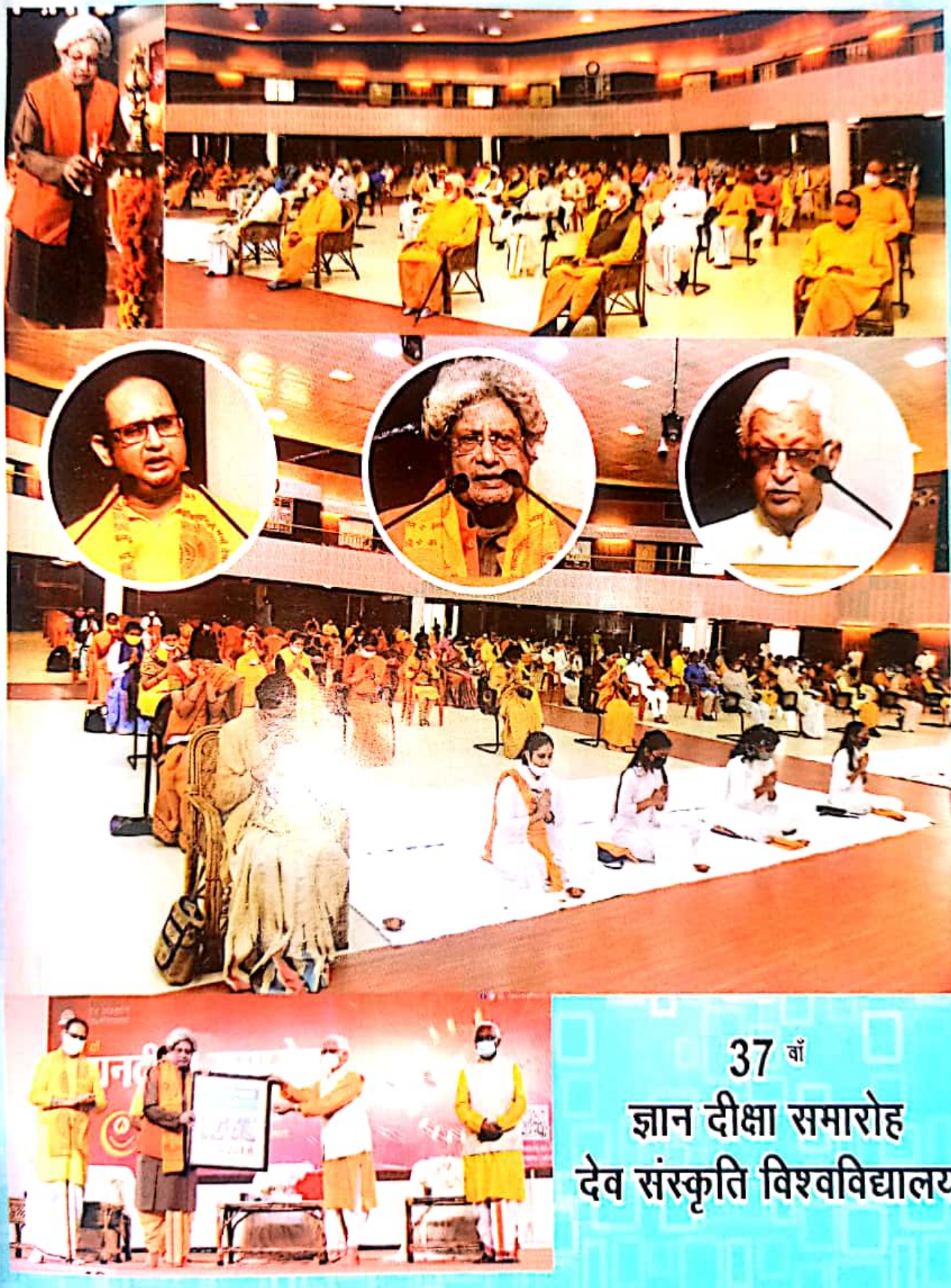

37 वाँ
ज्ञान दीक्षा समारोह
देव संस्कृति विश्वविद्यालय

Scanned with CamScanner

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प. नि. 01-12-2020
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020

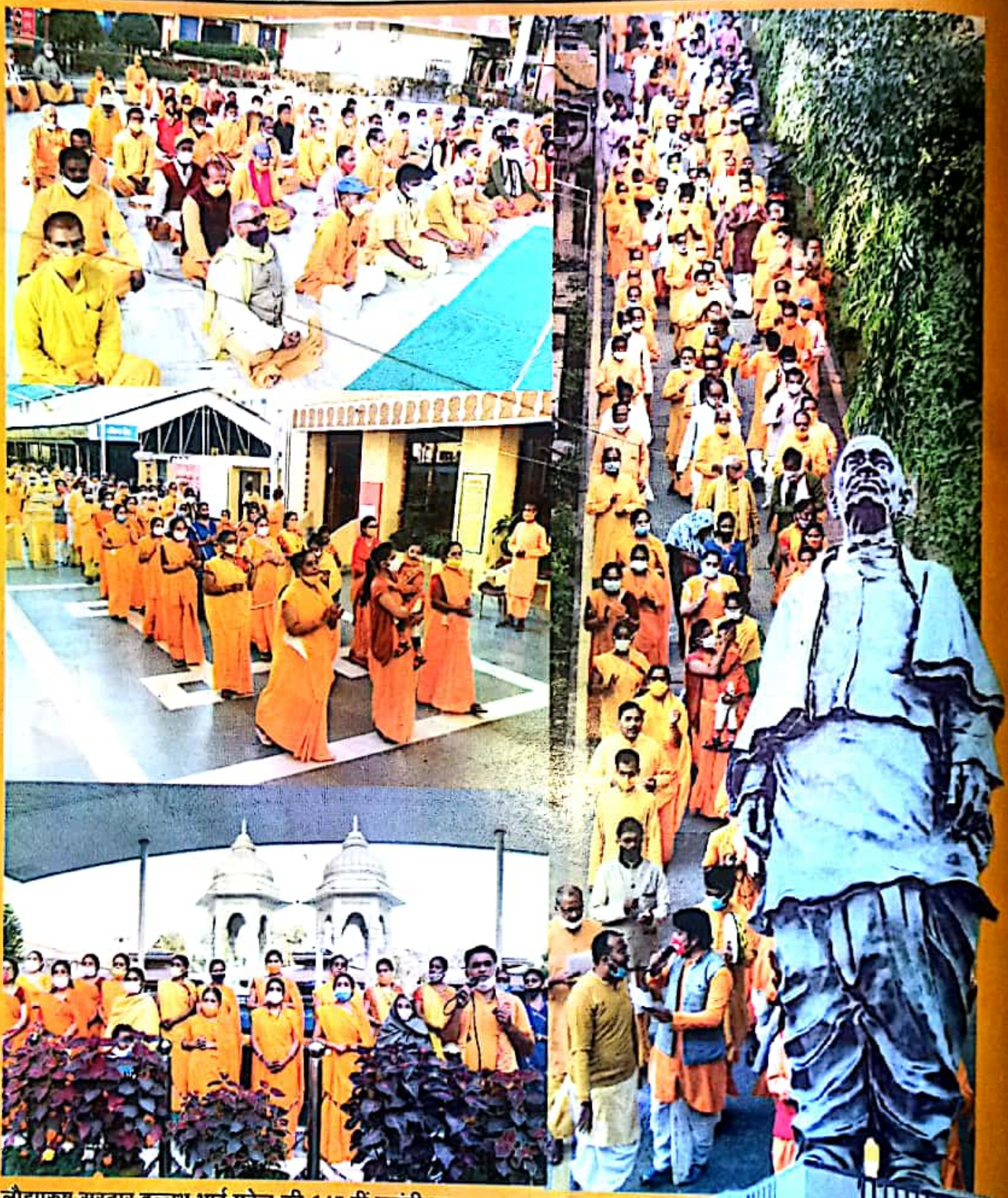

लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की 145 वीं जयंती पर
युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में अंतेवासी कार्यकर्त्ताओं द्वारा एकता रैली का आयोजन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

Scanned with CamScanner